परमसंत पं. फकीर चन्द जी महाराज के सूत्र

1. इन्सान बनो। अपनी नीयत साफ रखो।
2. हमेशा आशावादी रहो।
3. सुमिरन मन को शांत करता है।
4. मन, वचन और कर्म से शुद्ध रहो।
5. अपने निजी स्वार्थ के लिए औरों को धोखा मत दो।
6. तुम्हारा शरीर हरिमन्दिर है, प्रभु स्वयं इसमें रह रहे हैं। उसको खोजो, वह अवश्य मिलेगा।
7. आत्मा और परमात्मा के मिलाप में मन ही रुकावट है।
8. मन को वश में कर लो, आत्मा स्वयं परमात्मा की ओर खिंची चली जाएगी।
9. सादा ज़िन्दगी और ऊँचे ख्याल रखो।
10. नफ़रत से नफ़रत को नहीं काटा जा सकता।
11. जो वायदा आपने किया है, उसे पूरा करो, यही मानवता है।
12. कर्म के कानून से कोई नहीं बच सकता।
13. जो सलूक आप अपने से नहीं चाहते, वह दूसरों से हरगिज मत करो।
14. अपना बोझ दूसरों पर डालने की कोशिश न करो।

फकीर लाइब्रेरी चैरिटेबल ट्रस्ट

मानवता-मन्दिर, सुतैहरी रोड, होशियारपुर।

साईं की सदा
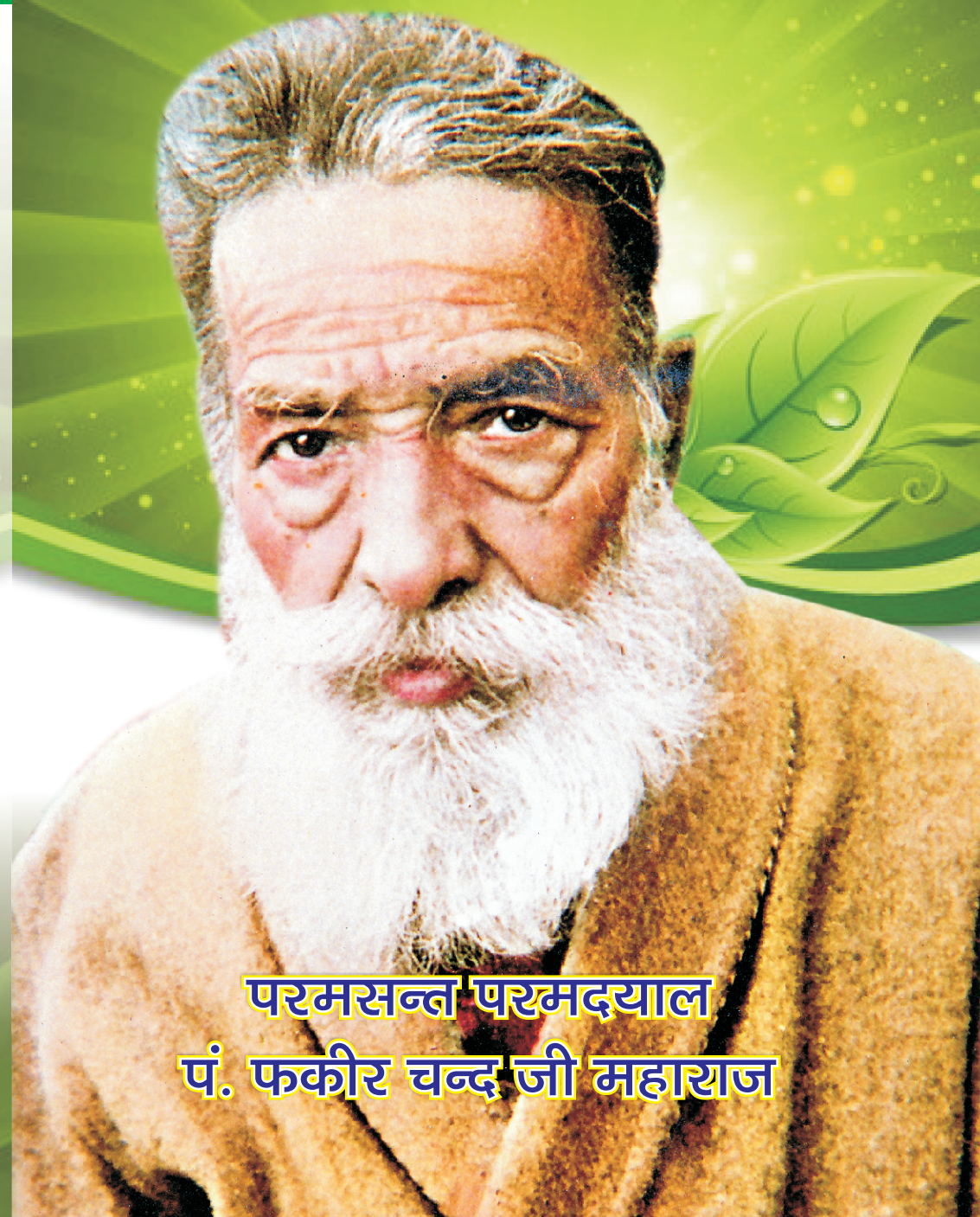
परमसन्त परमदयाल

पं. फकीर चन्द जी महाराज

साईं की सदा

परमदयाल फ़कीरचन्द जी महाराज
के
अनुभवी लेख

प्रकाशक :

फकीर लाइब्रेरी चैरिटेबल ट्रस्ट (रजि.)

होशियारपुर (पंजाब)

प्रथम संस्करण :
अक्तूबर 1964

द्वितीय संस्करण :
सं० शाका 2016

मूल्य :

सन्त सतगुरु। अजर-अमर-अविनाशी

[लेखक-दाता दयाल जी]

जब संत कबीर स्वयं यह कहते हैं कि-

मैं न मरूँ मरि है संसारा। मोहि मिला ज्यावन हारा॥

फिर न जाने क्यों संसार उन्हें मरा हुआ समझता है। किन्तु मैं ऐसा नहीं समझता। अब भी कितने ही व्यक्तियों को कबीर जी का उपदेश हुआ करता है। हिमालय पर्वत पर एक बंगाली नवयुवक एम. ए. योग अभ्यास किया करता था। उसने प्रसिद्ध किया कि कबीर जी ने उसे अपना शिष्य बनाया था।

मैं स्वयं कबीर पंथी नहीं हूँ। मुझे अनेक बार कबीर जी का उपदेश हुआ है। बीजक का टीका लिखते समय कई बार कठिन शब्दों का अर्थ स्वयं कबीर जी ने मुझे समझाया था। हाँ! मुझे उनका दर्शन स्वप्न में होता रहा है। जाग्रत अवस्था में निस्सन्देह नहीं हुआ। इस कारण अधिक नहीं कह सकता।

एक प्रेम विश्वास का नाता, और न नाता मानूँ।
सच्चे भाव से जो मुझे पूजे, प्रेमी उसको जानूँ॥
तीरथ व्रत नेम और धर्मी, सब फोकट व्यौहारा।
एक प्रेम की चाह है मुझको, प्रेम भक्ति का सारा॥
त्यागो छल बल और स्यानप, प्रेम हृदय में लाओ।
राधास्वामी प्रेम की मूरत, प्रेम की भेंट चढ़ाओ॥

....

राधास्वामी कहे जो मुख से, वह सम्बन्धी है मेरा।
मेरे घट के अंत:पुर में, उसके चरणों का डेरा॥

सत्गुरु सन्देश

॥ ले० दातादयाल ॥

जैसा गुरु वैसा ही चेला। दोनो का है रूप सुहेला॥
सांचे का सांचे से मेला। यह खेला वह भी खुल खेला॥

बात-बात में समझ जो आई। मन से गई मन की द्वचिताई॥
जब अज्ञान की मिटी बुराई। आप ही प्रगटी आप भलाई॥

अब नहीं भ्रम का नाम निशान। साँचा गुरु मिला अब आन॥
एक शकल के दो इन्सान। दोनों ही हैं चतुर सुजान॥

भेदभाव जब मन से गया। चेला गुरु जैसा जब भया॥
ऐसा गुरु तुम्हें मिल जाय। पल में मनका भ्रम नसाय॥

झूठे हैं जग के मतवाले। वह माया के पड़े हैं पाले॥
झूठे गुरु का झूठा चेला। झूठी संगत झूठ झमेला॥

झूठ के होता नहीं पाँव। झूठ का कोई शहर न गाँव।
जो कोई झूठ की संगत करे। कभी न सुधरे पचि पचि मरे॥

झूठे गुरु की ओट न गहना। इससे अलग थलग तुम रहना।
नहीं वह लेगा इक दिन जान। ज्ञान बताय करे अज्ञान॥

अंधे का गुरु अन्धा जानो। दोनो में है भ्रम यह मानो॥
मुँह के बल जब धम से गिरे। फिर पछताये काज न सरे॥

समझ समझ नर चतुर स्याना। झूठे गुरु के पास न जाना॥
झूंठे गुरु को दुश्मन जान। उसको तजि दे हो कल्यान॥

सांचे गुरु की यह पहिचान। चेला करे वह आप समान॥
पारस से गुरु बढ़कर जानो। बात मेरी यह सच्ची जानो॥

पारस से लोहा छू जाय। वह सोने के मोल बिकाय॥
संतों की जो शरन में आया। संत बना जग फंद कटाया॥

ऐसे गुरु पर तन मन वारो। जीते जी ही काज संवारो॥
यह शिक्षा है यह उपदेश। गुरु सुनाया तुम्हें संदेश॥

राधास्वामी सतगुरु पूरे। चेले को भी कर लिया पूरे॥
चेला अब नहीं भ्रम फंसान। गुरु ने बख्शा पद निर्वान॥

मौज! सन्त सतगुरु की व्याख्या!!

॥ ले०- परम दयाल जी महाराज॥

मैं इस बार ग्राम मुल्लांपुर जि० लुधियाना में अपने मित्र श्री मंगलसेन वर्मा के घर गया। यह मेरे बसरा बगदाद के साथी हैं। उनके पिता स्वर्गीय श्री गोपाल सहाय जी वर्मा राधास्वामी मत के अनुयायी थे और उनके कारण उनका समस्त परिवार इसी मार्ग पर चलता है। श्री गोपाल सहाय जी ने 40 वर्ष शेष जीवन सन्त मत के साधन और अभ्यास में बिताया और 5 पुस्तकें हस्तलिखित बहुत ही सुन्दर अक्षरों में बिना किसी काट छाँट के लिखी हैं। वह पुस्तकें मैं अपनी साथ ले आया। शिमला में एकान्त था, उनका अवलोकन करता रहा। मास्टर मोहन लाल फ़ाज़िल भी मेरे साथ थे। उन्होंने भी उनका अध्ययन किया। उनके एक लेख को पढ़कर मास्टर मोहनलाल जी ने मुझे उस पर प्रकाश डालने के लिए कहा। वह लेख तो लम्बा है किन्तु उसका साराँश यह है–

''सत् पुरुष के दरबार में समस्त संसार के समाचार प्रत्येक समय पहुँचते रहते हैं और उनकी सूचना मिलने पर मालिक की मौज ने अपने यवराज, परम हंस (अगम पुरुष) को आदेश दिया कि वह पृथ्वी मंडल पर आयें। और उनके साथ बहुत से हंस सोहं पुरुष से भी

आये और वह विभिन्न रूपों में प्रगट हुये। वह सत् पुरुष के अंश वंश थे। कोई वैद्य, कोई डाक्टर, कोई इन्जीनियर, कमिश्नर, पंडित, बलवान्, योधा, शस्त्रधारी, कलाकार, व्यौपारी बना। कोई साधु, सन्यासी, परोपकारी, दानी, भक्त, आदर्श पिता, आदर्श पुत्र भाई आदि बने और संसार में प्राणियों के कल्याण हेतु कार्य करते रहे।

वह लिखते हैं कि सन्त कबीर ने सन्त मत की नींव डाली और पृथ्वी के रहने वालों को एक ऐसा मार्ग बताया कि वह अपनी इच्छानुसार बिना किसी रोक रुकावट के सत लोक तक पहुँच जाये और इस मार्ग की युक्ति बताने और आदेश देने का उत्तरदायित्व समय के सन्त सतगुरु पर छोड़ा गया। आदि आदि।

उन्होंने इस लेख में अधिक बल इस बात पर दिया है कि जो कुछ है वह समय का सन्त सतगुरु है। उसके सत्संग, दर्शन और तन, मन, धन की सेवा के प्रताप से मानव के समस्त अपराध क्षमा हो सकते हैं और यह भी लिखा है कि सतसंगियों के आदर्श जीवन से समस्त भू मंडल का वातावरण प्रिय और सुहावना बना दिया जाये। जिससे कि जो कोई भी देखे वह चकित हो और समय के सन्तमत गुरु के चरणों में चला जाये। जिससे कि भविष्य में कोई अधूरा गुरु किसी जिज्ञासु को पथ भ्रष्ट न कर सके।''

मा. मोहनलाल जी के प्रश्न पर मेरे नेत्र बन्द हो गये। दाता दयाल महर्षि जी के शुद्ध स्वरूप की कृतज्ञता समक्ष आई जिनके द्वारा मैं इस सन्तमत में आया और अपनी उसी कुरेद को मिटा सका।

मोहनलाल–पंडित जी! आपकी आकृति इस समय विशेष प्रकार का प्रकाश, आनन्द और शान्ति वर्षा रही है। आपको क्या मिला?

फ़कीर– सच कहता हूँ तो संसार काफ़िर कहेगा। मुझे मिला।

तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा। सत्त नाम सतगुरु गति चीन्हा॥

मेरे अंतर से जो आकर्षण, आन्तरिक नाम और सतगुरु का था वह समाप्त हो गया। यह नाम और सतगुरु केवल मानवीय सुरत की शंकाओं, सन्देहों और भ्रमों को निवारण करने के लिये था। दाता दयाल सन्त सतगुरु की दया और अंतरीय अनहद शब्द, नाम के प्रभाव से यह सब मिट गये और मुझे वास्तविकता और सत्यता का ज्ञान हो गया और मैं प्रत्येक रूप से शान्त हूँ। शरीर में रहते हुए अपने निज देश की सैर करता रहता हूँ।

दाता दयाल महर्षि जी के पवित्र चरणों में मौज़ 1905 में हो गई थी। जैसा कि मैं कहा करता हूँ। इस मास निरन्तर पत्र लिखने के पश्चात् हुज़ूर दाता दयाल जी का उत्तर आया था।

''फ़कीर तुम्हारे पत्र मिलते रहते हैं। तुम्हारे विचारों का आदर करता हूँ। किन्तु मैंने शान्ति, वास्तविकता और सत्यता को राधास्वामी मत में हुजूर परम पुनीत राय बहादुर सालिगराम जी द्वारा प्राप्त किया है यदि इस मार्ग पर चलने से तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो तुम मुझ से लाहौर में आकर मिल सकते हो।''

उनको उस समय की लिखावट सत्य सिद्ध हुई और मैं ऐसी अवस्था में चला गया, जहाँ की अवस्था को वाणी व्यक्त नहीं कर सकती है। आपने प्रश्न किया कि जो कुछ गोपाल सहाय जी ने लिखा है, क्या वह सत्य है? मेरा उत्तर है, हाँ! सत्य है। किन्तु इस सच्चाई का विश्वास कोई सन्त सतगुरु ही किसी को करा सकता है। देखो ना! यह लोक लोकान्तर हैं। आकाश की ओर दृष्टि डालो लाखों, करोड़ों तारा मंडल हैं या नहीं।

मोहनलाल– हाँ! हैं! वर्तमान विज्ञान ने भी ऊपर के सूर्यों का उल्लेख किया है बल्कि यहाँ तक कि ऊपर के लोकों में से कई एक के फोटो भी लिये हैं।

फ़कीर– मास्टर साहब हमारा और आपका शरीर इस विराट् 'पुरुष' तारागण, चन्द्रमा, सूर्य आदि की किरणों द्वारा जो इस पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार का खाद्य भोजन आदि उत्पन्न करती हैं उनके कारण बनता है और बिगड़ता है। वर्तमान वैद्य विटामिन्स से शरीर की बनावट और स्वास्थ्य को मानते हैं। इसी प्रकार हमारा मन भी किसी और प्रकार के लोकों व तारागणों की धारों से बनता है। इन लोकों के नाम ब्रह्मलोक, विष्णु लोक, शिव लोक, गंधर्वलोक आदि रखा हुआ है। और इसी प्रकार हमारी आत्मिक अवस्था जो प्रकाश स्वरूप है, वह प्रकाश भी ऊपर के लोक लोकान्तर जिनको संत जन सोहं पुरुष आदि के नाम से व्यक्त करते हैं, उनकी किरणों से बनी हुई है। अत: हमारे शरीर में जो कुछ भी है वह ऊपर के लोकों, लोकान्तरों की धारों से बना हुआ है।

मोहनलाल– वेदान्त तो यह कहता है कि सब कुछ मानव की आत्मा ही है।

फ़कीर– अनुभव यही मानता है। आज वेदान्ती को कोई विशेष औषध दे दो। उन्मत्त हो जायेगा। मस्तिष्क का संतुलन बिगड़ जायेगा। जिस दृष्टि से वेदान्त कहता है वह बौद्धिक रीति से ठीक है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु विचार का प्राकट्य हमारे जीवन का चूँकि हमारे अंतर से होता है। मस्ती की अवस्था में मानव का मन ऐसा सोचता है। वास्तव में मानव का जो कुछ भी है यद्यपि उसका संसार उसके अंतर से ही बनता है। किन्तु जो कुछ मानवीय शरीर, मन और आत्मिक अवस्थायें

विद्यमान हैं उनकी बनावट, पालन, पोषण, सबका सब ऊपर के लोकों, इस जगत् के जलवायु, आहार आदि का परिणाम है।

इसके अतिरिक्त मानसिक और आत्मिक रचना मे एक और वस्तु है जो शरीर के तीनों प्रकार (शारीरिक, मानसिक और आत्मिक) बोध-भानों की साक्षी है जो इस खेल का अनुभव करती है। उसका नाम सुरत है। यह सुरत भी किसी और लोक से आई है। जहाँ से वह आई है उसका नाम मेरी समझ में अगम लोक है। सुरत को अपने शरीर, मन, प्रकाश व शब्द से निकाल लो। यह समस्त खेल समाप्त हो जायेगा।

जिस प्रकार किसी वस्तु के हमारे शरीर के साथ लगने से हमारा Nervous System नाड़ीगति हमारे मस्तक को सूचना देता है और मस्तक उसकी उन्नति, भलाई के लिये सोचता या सहायता करता है। इसी प्रकार वह समस्त सृष्टि एक पूर्ण तत्व है। पूरण पुरुष ही महापुरुष है। इसका आत्मा सत्लोक है मन सोहं पुरुष है, और स्थूल रचना विराट् पुरुष है और इसका साक्षी अनामी लोक है। अकाल पुरुष या ज़ात है। जिसकी अंश हमारी सुरत है।

हमारे शरीर में एक तबियत है। जो स्वयं शरीर को स्वास्थ्य की ओर आकर्षित रखती है। औषधि, चिकित्सा केवल साधन मात्र हैं। हमारे मन के भीतर एक ठहराव की शक्ति है जो कि चंचलता और आपित्त के समय जाने हुये अथवा अनजाने हुए सुख चैन या ठहराव स्वाभिकत: उत्पन्न करने का प्रयत्न करती है। योग साधन विधि है। ऐसे ही आत्मिक अवस्था में एक वस्तु, मन और शरीर को भूलकर अपनी आत्मा में प्रसन्नता प्राप्त करने की ओर आकर्षित करती रहती

है। भजन एक युक्ति है। साधन है। जिस प्रकार यह शक्तियाँ हमारे अंदर हैं, उसी प्रकार इस बाह्य पूरण पुरुष के अस्तित्व में भी वही शक्ति कार्य करती है। और वह बाहरी शक्ति हमारे अन्तर भी है।

हम समस्त जीव-जन्तु इस पूरण पुरुष के अस्तित्व में ऐसे ही हैं जैसे हमारे शरीर में अनेक प्रकार के कीटाणु हैं। जिस प्रकार हमारे अन्तर के कीटाणु हमको पूरण रूपेण नहीं जान सकते हैं। इसी प्रकार यदि कोई प्राणी यह चाहे कि वह पूर्ण पूरण पुरुष का पूरण रूपेण भेद ले सके, असंभव है। इसीलिये समस्त साधु सन्त जो इस मार्ग पर चले, सब ने अन्त में उस मालिक को आश्चर्य रूप का बेअन्त कहा और उसके समस्त खेल को मौज कहा और प्रत्येक व्यक्ति को मौज के आधीन रहने का उपदेश दिया। जिससे कि सुख, शान्ति रहे।

जिस नियम के अनुसार हमारे शरीर पर बाह्य प्रभावों से हमारा मस्तिष्क प्रभावित होता है, उसी नियमानुसार जैसी-2 माँग तथा आवश्यकता संसार में होती है, ऊपर के लोकों से एक शक्ति आकर उस माँग तथा आवश्यकता की पूर्ति करती है। शारीरिक रोग के दूर करने के लिये वैद्य, डाक्टर आये। हिन्दू शास्त्रों में इसीलिये धन्वन्तरी को अवतार माना। विश्वकर्मा, उद्योग, कलाकौशल की जान है। उसका आदर मान है। साधु, संत जो मानसिक और आत्मिक शक्ति देते हैं इसी श्रेणी में प्रतिष्ठित हैं। सामाजिक नियमानुसार संगठन और प्रेम की नींव रखने वालों का आदर मान है। शूरवीरों और सूरमाओं का भी आदर मान प्रतिष्ठा है। क्योंकि इनसे जन साधारण की रक्षा होती है।

इनके अतिरिक्त एक और शक्ति है, जो मानवीय सुरत को सदैव के लिये इस शरीर, मन और आत्मा से निकालती है। उसको संत सतगुरु कहते हैं। मेरे लिए दाता दयाल महर्षि जी संत सतगुरु सिद्ध

हुये, जिनकी दया से मैं अब शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बोधमानों के सुख-दुख की परवाह नहीं करता हूँ। संत कबीर के शब्दों की व्याख्या में विशेषकर सत्संगों में करता रहता हूँ। कितनी उच्च कोटि की शिक्षा है। यदि मनुष्य की समझ में आ जाये तो फिर भवसागर का खेल समाप्त हो जाता है। सुरत अपनी जात (निजरूप) में मिल कर अपने अस्तित्व को खो जाती है। और निजरूप में सर्वव्यापक हो जाती है।

जिस प्रकार अनेक डाक्टर, वैद्य, अनेक प्रकार के इंजीनियर, कलाकार, योधा, सूरमा, साधु, संत हैं और उनक स्वरूप से अनेक जीवों को लाभ पहुँचता रहता है। ऐसे ही संत सतगुरु भी अनेक ही हो सकते हैं। जिनके स्वरूप में जिज्ञासुओं का आवागमन छूट सकता है।

मा. मोहनलाल- किन्तु इस समय व्यास वाले अपने गुरु को संत सतगुरु मानते हैं, आगरे वाले अपने गुरू को अथवा अन्य सब शाखाओं वाले अपने-2गुरुओं को मोक्षदाता मानते है। क्या वे सारे के सारे संत सतगुरु हैं।

फ़कीर- हाँ! ठीक हो सकता है। यदि उनके गुरू उनको शरीर, मन और आत्मा से परे ले गये हों। और जब तक कोई स्वयं उन सोपानों से परे नहीं गया, उसका क्या अधिकार है कि वह केवल अंध विश्वास अथवा अज्ञान से अपने गुरू को संत सतगुरू कहे और उसका प्रचार करे और दूसरों का खंडन करे। प्रत्येक व्यक्ति का अपना-2 विश्वास है। किन्तु व्यर्थ एक दूसरे का खंडन करना अत्यन्त त्रुटि पूर्ण है। मास्टर साहब कितने व्यक्ति हैं जो सचमुच आवागवन से बचना चाहते हैं। मेरे सत्संग में सहस्रों व्यक्ति आते हैं आपको ज्ञात है। कितने हैं जो आवागवन से बचना चाहते हैं। आप अपनी ओर देखिये,

आपको अनुभव की प्रसन्नता मेरे सत्संग से मिलती है। किन्तु आप अभी तक इस अनुभव से आगे नहीं जाना चाहते हैं। आप को विवेकानन्द मिलता है। यह मध्यम सोपान है।

मैंने अपना समस्त जीवन इसी लगन में खो दिया। अब निज अनुभव विवश करता है कि अनुभव आनन्द के आगे जाऊँ। यह अनुभव आनन्द ही अगम देश कहलाता है और जो इस अनुभव को वर्णन करता है वह संत सतगुरु है और ऐसे पुरुष कई हो सकते हैं।

मा. मोहनलाल: इस अनुभव के आगे क्या है?

फ़कीर – सुरत हुई अतिकर मगनानी, पुरुष आमी जाये समानी॥

जहाँ पुरुष तहाँ कुछ नाहीं; कहे कबीर हम जाना।
जो कोई हमरी सैना समझे, पावे पद निर्वाना॥

मा. मोहलाल – तो संत सतगुरु क्या देता है? इसे भली प्रकार बतायें।

फ़कीर – मुझे क्या पता? स्वामी जी ने या संत कबीर आदि या अन्य जो संत सतगुरु कहलाने वाले हुए किसी को क्या दे गया। मुझे जो कुछ दातादयाल जी के शुद्ध स्वरूप से मिला, वह बताता हूँ। सुनो! संसार की क्षणभंगुरता के विश्वास से मेरी सुरत सांसारिक खेल में नहीं फंसती। मानसिक भाव, विचार जो रूप रंग अन्तर में धारण करके मेरी सुरत को खींचते थे, अब नहीं खिंचता। चूँकि जब दूसरे मेरा रूप अपने अन्तर देखते हैं और मैं नहीं होता। इसने निश्चय करा दिया कि मेरे अन्तर जो कुछ होता था, वह मेरे ही मन का खेल था। उसकी ओर से मन अब फिर गया और मैं इनमें अब नहीं फँसता हूँ।

सहस्र दल कमल छूटा, त्रिकुटी छुटी, सुन्न, महासुन्न भाग गये।
भंवर गुफा के भंवर से निकला, यह सब खेल मन के थे॥

आत्मिक आनन्द, प्रकाश के समुद्र में, रहकर जो आत्मा आनन्द लेता था। वह भी अब छोड़ गया। क्योंकि उसके प्राप्त करने के लिए, साधन में बैठकर सुमिरन, ध्यान करते हुए, इस अवस्था को प्राप्त करता था। इसमें शारीरिक और मानसिक बल लगाना पड़ता था। अब क्या होता है? सुरत से स्वाभाविक ही यह अब सब कुछ छोड़ आता हूँ और इन तीनों प्रकार के बोधभानों को छोड़ने के लिये किसी सुमिरन, ध्यान या प्रयत्न प्रयास की आवश्यकता नहीं रहती है। जहाँ ऊपर सुरत गयी, सहज रीति से एक सहज प्रकाश और सहज शब्द, जो कि मेरी अपनी ही सुरत के साथ है, वह रहता है। और वहाँ ने यादे खुदा न, यादे दयाल, न शरीर, न मन, न कोई भाव या विचार शेष रहता है। अपने ही आप के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

सहजे ही धुन होत है, हर दम घट के मांहि।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हालत नांहि॥

माला फेरूँ न हरि भजूं, मुख से कहूँ न राम।
मेरा राम मुझे जपे, तब पाऊँ विश्राम॥

मोहनलाल: इससे क्या लाभ हुआ?

फ़कीर – न लाभ, न कोई हानि। जीवन और अस्तित्व के खेल बन्द हुये। और सिफ़ात (गुण) के खेल बन्द न वर्तमान, न भूत, न भविष्य, न कुछ बना, न कुछ बिगड़ा। एक परम तत्व आधार है। उसमें रहता हुआ विचरता रहता हूँ।

इब्तदा जो थी हमारी, इन्तहा भी वह ही हुई।

मा. मोहनलाल :- यह इब्तदा कब हुई थी?

फ़कीर:- जब रचना नहीं हुई थी। अपनी ओर से कहता हूँ तो संसार विश्वास न करेगा। इसलिये स्वामी जी का बैसाख मास का शब्द सुनाता हूँ।

काल रची, त्रिलोकी सारी, दयाल रचा सतलोक सम्हारी॥
तीन लोक काल का अस्थाना। चौथा लोक दयाल अस्थाना॥

काल दिया जीवन को धोका। चौथे पद से सबको रोका॥
दयाल पुरुष का भेद न दीन्हा। कर्म काण्ड में जीव अधीना॥

अपनी पूजा सब विधि गाई। जीव चले चौरासी भाई॥
संतमता खुलकर अब गाऊँ। देकर कान सुनो समझाऊँ॥

नहीं पाताल नहीं मृत अकाशा। पाँच तत्व नहीं त्रिगुण स्वाँसा॥
नहीं शिव, शक्ति, न पुरुष प्रकृति। ज्योति निरंजन नहीं प्रकृति॥

तारा मण्डल न सूरज न चन्दा। पिण्ड ब्रह्मंड रचना नहीं अंडा॥
कर्म न शेष नहीं ओंकारा। माया ब्रह्म न ईश्वर धारा॥

आत्म परमात्म नहीं दोऊ। सुन्न महासुन्न रचा न कोऊ॥
अल्लाह, खुदा रसूल न होते। पीर मुरीद न दादा पोते॥

वेद पुरान न कुरान न कहते। मसजिद मुल्ला बाँग न देते॥

कोई प्राणी जब तक इस अंतिम अवस्था तक अथवा, निज घर तक न जायेगा, उसका आवागमन समाप्त न होगा।

मोहनलाल:- यह मार्ग महा कठिन है। कौन इस आदि अवस्था का अधिकारी है और कौन चाहता है कि यहाँ तक जाये।

फ़कीर:- और किसी का पता नहीं। मैं तो चाहता था। इस लिये अगम लोक की धार दाता दयाल महर्षि जी के रूप में मुझे वहाँ का

पता दे गई। उनके जितने शब्द मेरे नाम है, सब में इसी आदि अवस्था का संकेत है। संकेत को समझ नहीं सकता था। उस शुद्ध स्वरूप ने आचार्य पदवी देकर मुझे अपने घर जाने के लिये विवश कर दिया।

गोपाल सहाय वर्मा ने जो कुछ लिखा है, वह ठीक है। जिस मनुष्य को भी जिसने अपने घर पहुँचा दिया। वह उस के लिए समय का संत सतगुरु ही है। मास्टर साहिब! बहुत सी बातें पन्थों, डेरों, धामों, सम्प्रदायों, समाज आदि को स्थापित रखने या निज स्वार्थ के लिये बनाई जाती हैं और जो सतगुरु ऐसा प्रचार करते हैं, वह संत, सतगुरु तो क्या सत्संगी भी नहीं है।

मा. मोहनलाल:- गोपाल सहाय जी ने लिखा है कि जो व्यक्ति तन, मन, धन समय के सन्त सतगुरु को देता है, उसकी समस्त त्रुटियाँ, अपराध क्षमा कर दिये जाते हैं। क्या वह ठीक है?

फ़कीर:- हाँ! किन्तु तन, मन, धन देने का तात्पर्य किसी को ज्ञात नहीं है। किसी सन्त सतगुरु के अतिरिक्त कोई और शक्ति भी नहीं है, जो किसी का तन, मन, धन ले सके। संसार ने रहस्य को नहीं समझा है, वाणी तो यह कहती है-

शिष्य को ऐसा चाहिए, गुरु को सब कुछ देय।
गुरु को ऐसा चाहिये, शिष्य का कछु न लेय॥

सन्त सतगुरु के दरबार में जो उनकी वाणी को सुनकर गुनता है। गुनने से जो उसको ज्ञान, अनुभव या समझ आती है, इस समझ और ज्ञान से मानव की सुरत स्वयं संसारिक, शारीरिक और मानसिक सम्बन्धों से उपरामित हो जाती है। फिर तन, मन, धन का आकर्षण मानव में नहीं रहता है। यही भाव है तन, मन, धन को भेंट करने का।

सतगुरु यदि समर्थ है तो उसकी वाणी मानवीय सुरत को इन समस्त सम्बन्धों से निकाल देगी। जिस प्रकार मेरी सुरत निकली है। मेरा क्रियात्मक जीवन आपके समक्ष है। मन के चक्र से नहीं निकल सकता था। वह आचार्य बना कर मेरी आँखें खुलवा दी हैं। अब मैं इस मन के किसी प्रकार के खेल में फँसता नहीं हूँ।

मानव की त्रुटियाँ क्या है? अपने अज्ञान से, अपने शारीरिक और मानसिक सम्बन्धों को सत्य मानकर उनको स्थिर रखने के लिये जो उचित अनुचित कार्य करता है। यह त्रुटियाँ हैं। सत्संग से रहस्य मिल जाता है और मानव इन कल्पित बन्धनों से निकल जाता है।

पहले पाप कमाय कर, बांधी विष की पोट।
सकल पाप छिन में कटे, जब आये सतगुरु ओट॥

सतगुरु की ओट केवल उसके वचनों को समझना और गुनना है। जब समझ आ गई, पूर्ण विश्वास हो गया, फिर पाप-पुण्य, हानि, लाभ, जीवन, मरण, कर्म, धर्म का भ्रम समाप्त हो जाता है। किन्तु जिनके मन अभी शुद्ध और सूक्ष्म नहीं हैं, उनके लिये बाह्य भक्ति, सेवा आदि अनिवार्य हैं, जिससे कि मन प्रेम के कारण, सूक्ष्म और शुद्ध हो जाये और सत्संगों के वचनों से विवेक भी जागता रहे।

मा. मोहनलाल- तो सन्त सतगुरु कई हो सकते हैं?

फ़कीर:- व्यक्तिगत से आत्मिक शान्ति के लिये कई हो सकते हैं। एक से सब लाभ प्राप्त नहीं कर सकते हैं। किन्तु एक समय का सन्त सतगुरु कभी-कभी संसार में प्रगट होता है, वह शिक्षा को युग के अनुकूल बदल जाता है, जिससे कि जन-साधारण को लाभ पहुँचे। यह समय की आवश्यकता का प्रश्न होता है। ''जैसी माँग, वैसी

पूर्ति।'' इस समय मानव जाति घोर संकट, कष्ट और आपत्ति में है। मौज ने इस नवीन शिक्षा को जो कि वास्तव में प्राचीन है। किन्तु वर्णन शैली नई देने के लिए मेरे मस्तिष्क को गतिमान किया है। विवशत: घसीटा जा रहा हूँ। मास्टर साहब! सम्भव है आप अथवा अन्य लोग मुझे अहंकारी कहें, किन्तु मेरी आत्मा मानती है कि मैं अहंकारी नहीं हूँ।

देखो! आज मानवता मन्दिर में सन्ध्या समय, सरदार बलबीर सिंह ठेकेदार ने अपना वृतान्त सुनाया। उसको कुछ दिन हुये शाम को बड़े जोर का बुखार आया। सर्दी से इस प्रकार काँपता था कि इतने गर्म कपड़ों के होते हुये भी उसको कोई लाभ नहीं हुआ। उसका छोटा भाई 24 वर्ष का उसके पास था। उसके भाई को उसके कमरे में मेरा स्वरूप खुली आँखों से दृष्टि गोचर हुआ और मेरे स्वरूप ने कहा कि घबराओ मत वह प्रात:काल तक ठीक हो जायेगा और वह प्रात:काल ठीक हो गया। कोई दवा-दारू नहीं की गई।

आज ही सरदार कर्तार सिंह की माता ने कहा कि जब वह प्रात:काल साधन में मंदिर में बैठी हुई थी और भी कुछ व्यक्ति अभ्यास में थे और मैं भी साधन में था, वह माई कहती है कि उसके अन्तर मेरा रूप प्रकाश में प्रगट हुआ और उस को कहा ''माई मैं तुमको निज घर अवश्य ले चलूँगा।''

ऐ मोहनलाल! मैं शपथ पूर्वक वर्णन करता हूँ कि मैं इससे नितान्त अनभिज्ञ हूँ। न मैंने कुछ कहा, न कुछ किया। इस प्रकार की बातों से अनेक प्रकार के धर्म, पन्थ बने और मानव जाति वास्तविकता से अनभिज्ञ होती हुई परस्पर बँट गई।

यह जितना खेल है, मानव के अपने ही भाव, विचार और विश्वास का परिणाम है। मुझे दाता दयाल जी ने जगत कल्याण का कार्य सौंपा, मैंने साहस पूर्वक सत्यता को व्यक्त किया। यद्यपि यही बात सन्त कबीर और राधास्वामी दयाल ने काल, माया, भक्षक और रक्षक के शब्दों में कही है। यही मन जो काल है, भक्षक और रक्षक के शब्दों में कही है। यही मन जो काल है, भक्षक है और संसार में रक्षक है। मैंने स्पष्ट शब्दों में निर्भय होकर कह दिया। इस अनुभव के आधार पर मौज़ के आधीन पुकार कर चला हूँ ''मनुष्य बनो''।

अपने मन के विचारों को शुद्ध, पवित्र, आशावादी रखो। ''शुभ संकल्प अस्तु'' के अनुयायी बनो और अपना आदि स्वरूप प्रकाश व शब्द को इष्ट बनाओ, जिससे कि तुम इस मन के चक्र से निकल जाओ। जब तक मन साथ है, आवागमन से मुक्ति असम्भव है और न अपने घर को जा सकते हो और जब तक मन के भीतर शुभ, आशावादी, विचार अच्छी भावनायें न होंगी, वह जीवन किसी रूप में भी सुखदाई न रहेगा।

जैसी आसा वैसी वासा, जैसी करनी वैसी भरनी,
जैसी मति वैसी गति।

इसलिये मैं अपने-आपको सन्त सतगुरु कहता हूँ। केवल यही रहस्य है, जिसको समझने और क्रियात्मक रूप में लाने में मानव जाति प्रेम और संगठन के सूत्र में बंध सकती है और अपने जीवन को सुखदाई बना सकती है। और अन्त में आवागमन से बच सकती है। संत कबीर ने भी संसार को यही चेतावनी दी है।

मानव बनकर न मुआ, मरा तो डांगर ढोर।
एक हूँ जीव ठौर न लगा, लगा तो हाथी घोड़॥

दाता दयाल जी के शुद्ध स्वरूप ने भी यही कहा है कि पूर्ण रूपेण प्रत्येक कार्य में ''मनुष्य बनो''। (Be man Entire & Whole and

in everything) मुझ पर गुरू ऋण था, कि फकीर चोला छोड़ने से पूर्व शिक्षा को बदल जाना, वह बदल दी। यदि सचमुच मौज ने मुझे जगत कल्याण हेतु भेजा है तो समय निकट है जब मानवता का युग आयेगा, मानव जाति का अज्ञान, भ्रम दूर होगा। यदि नहीं होता तो मुझे क्या। सच्चाई के साथ अपने जीवन का अनुभव वर्णन कर चला। कोई सुने या न सुने।

दाता तेरे हुक्म की पालना कर डाली, तू आप जगत का है खुद माली।
भूल चूक हो मुफ़ मेरी, जा समझी बात वह कह डाली॥
शब्द प्रकाश में दायमी बासा मिले, यह मन का खेल मेरा खतम हो
दास फ़कीर यह अर्ज करे मालिक अपनी अब गोद में लेलो॥

....

आस अब किसकी करूँ, जब दास तेरा हो गया।
मैं हुआ तेरा तो तू भी, स्वामी मेरा हो गया॥

तू है मेरे साथ पल छिन, फिर क्यों हो चिंता कोई।
मेरे घट में जब तेरे, रहने का डेरा हो गया॥

हाथ जब तुने दया का, मेरे सिर पर रख दिया।
मैंने समझा काल का सब, हेरा फेरा हो गया॥

जग नहीं स्थिर न स्थिरता है, जग की वस्तु में।
यह तो चिड़िया रैन का, सचमुच बसेरा हो गया॥

राधास्वामी नाम का, सुमिरन है, उठते बैठते।
नाम भाव के सिन्ध से, तरने का बेड़ा हो गया॥

....

गुरु के चरनों में पड़ा जब, बन गया मेरा जनम।
बन गया जब बन गया, फिर क्या बिगाड़ेगा करम॥

चलते फिरते जागते सोते हैं, सुमिरन नाम का।
यह धरम मेरा हुआ, अब धारूँ क्या दूजा धरम॥

पोथियाँ मैंने पढ़ी, निकला ना उनसे कोई काम।
गुरु की संगत पाई तो, फिर मिट गया मेरा भरम॥

भूला भटका काल माया ने, किया मेरा अकाज।
मिल गये सतगुरु तो फिर, सूझा ठिकाने का मरम॥

धन्य सतगुरु राधास्वामी, धन्य महिमा आपकी।
हो दया सुमिरन भजन और ध्यान ही मेरा नियम॥

....

मौज

॥ लेखक : परम दयाल जी महाराज॥

क्या खूब सुरत मेरी, खोपड़ी में घूमती रहती है।
अजब कारखाना है, जिसमें यह खेलती रहती है॥

जिस प्रकार बाह्य संसार में मानव देशाटन करके नया-नया अनुभव प्राप्त करता है। वैसे ही मेरी सुरत साधन व अभ्यास जो कि खोपड़ी में होता है, इससे नये-नये अनुभव होते रहते हैं। यात्री अपनी यात्रा का वर्णन जो दूसरे से करता है, तो वह भी आनन्दित होते रहते हैं। ऐसे ही हमारे ऋषि, मुनि, साधु, सन्त, जिन्होंने अपने अन्तर चढ़ाई की, उनके अनुभवों से दूसरे भी आनन्द लेते हैं। यह धर्म, पंथ और योग आदि क्या है? प्राचीन महापुरुषों के अनुभव ही तो है।

मैंने समस्त जीवन जितना हो सका दाता दयालमहर्षि जी के संस्कार से अपने अन्तर यात्रा की है। प्राचीन यात्रियों ने किसी ने जप, तप, किसी ने योग आदि, किसी ने ज्योतिष, आयुर्वेदिक आदि को श्रेष्ठ माना और किसी ने अभ्यास को बहुत ऊँचा माना। मेरी यात्रा मुझे विवश करती है कि मैं अध्यात्म, ईश्वर पूजा, जप, तप से बढ़कर मानवता को मानूँ।

13-4-64 को वैसाखी के दिन मानवता मन्दिर में लायब्रेरी का उद्घाटन था, जो हुजूर सन्त कृपाल सिंह जी के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ था। वहाँ जो कुछ मैंने अथवा अन्य महापुरुषों ने कहा। वह (Tape Record) टेपरिकार्ड हुआ और सम्पादक शिव ने नोट किया। अब वह मानव कल्याण या भारत कल्याण के नाम से पुस्तकीय रूप में आ रहा है।

उसकी भूमिका कल लिखकर मैंने शिव सम्पादक को भेजी है। इस भूमिका में मैंने लिखा है-

अध्यात्म, ईश्वर, भक्ति, योग, जप और तप से बढ़ कर मानवता है। विचार आया कि मनुष्य बनो पत्रिका के प्रेमियों के लिये अनुभव प्रस्तुत कर जाऊँ।

प्रथम: अध्यात्म से बढ़कर मानवता क्यों है? समस्त आयु आत्मा, परमात्मा की खोज में बीती। आत्मा केवल हमारा स्वरूप है। यह समस्त संसार प्रकाश से बना है। जिस प्रकार पृथ्वी किसी समय सूर्य का एक टुकड़ा थी। ठंडी हो गयी। अब सूर्य की किरणों द्वारा इसमें जीवन, जन्तु सब कुछ उत्पन्न होता है। इसी प्रकार प्रत्येक जीव के अन्तर प्रकाश है। वह हमारा प्रकाश ही हमारा आत्मा है। अब यह

प्रकाश शरीर से बाहर निकल कर बड़े प्रकाश में मिल जाता है।वह आत्मा, परमात्मा का मेल हो जाना कहलाया है।

प्रत्येक व्यक्ति प्रकाश स्वरूप है। किन्तु शरीर के नाते वह प्रकाश सारे शरीर में फैला हुआ है और उसके फैलने के कारण हमारे अन्तर शारीरिक ओर मानसिक बोध–भान उत्पन्न होते हैं। यदि कोई व्यक्ति साधन द्वारा अपने प्रकाश स्वरूप आत्मा को जो समस्त शरीर में है, एकत्रित करके अपने आप को प्रकाशवान बना भी ले तो जब तक शरीर है, जीवन है, वह अनिवार्य रूप में शारीरिक और मानसिक बोध–मानों में आयेगा। यदि उसको अपने शारीरिक और मानसिक बोध–मानों पर नियंत्रण नहीं है और उनको सम नहीं रख सकता है तो उसका शारीरिक और मानसिक जीवन अपने और दूसरों के लिये दुखदायक हो सकता है। इसीलिये इस जीवन में जहाँ अध्यात्म है, किन्तु अध्यात्म से बढ़कर मानवता है। इस शारीरिक जीवन के नाते मानवता क्या है? शरीर और मन के बोध–भानों को नियंत्रण में रखना और सम अवस्था में रखना।

सर्वप्रथम बिना यम और नियम के किसी को अध्यात्मक [अर्थात् अपने–आपको प्रकाश स्वरूप बनाना और देखना] प्राप्त ही नहीं हो सकता और यदि किसी ने हठयोग, प्राण योग या किसी और उपाय से साहस करके अपनी आत्मा को एकत्रित भी कर लिया और अपने आपको प्रकाश स्वरूप होकर देख भी लिया। किन्तु केवल इस कर्म से उसका यह जीवन किसी रूप में गिरावट, घबराहट , फिक्र और चिन्ता से नहीं बच सकता है। क्योंकि प्रकाश की अवस्था में कोई व्यक्ति सदैव नहीं रह सकता है।

संसार वालो! सोचो मैं क्या लिख रहा हूँ? इस उद्‌घाटन पर मैंने अपने जीवन के उदाहरण प्रस्तुत किये थे। मेरे अंतर बसरा बगदाद में इतना अधिक प्रकाश और शब्द हुआ करता था कि जिसका कोई हिसाब नहीं। विभिन्न प्रकार की ध्वनि घंटा, शंख, मृदंग आदि सुना करता था। मुझे बड़ा अहंकार हो गया था। लाहौर आया। दाता दयाल जी ने देखा। वर्णन किया। तुम्हारी परीक्षा होगी। दूसरे दिन उन्होंने सांसारिक कार्य करते समय मेरी परीक्षा ली और मैं घबरा गया। और वह काम पूरा न कर सका, क्योंकि मैं अपने शरीर और मन को सम न रख सका। इसलिये मैंने घोषणा की है कि अध्यात्मक से बढ़कर मानवता है। मानवता की पूर्ण व्याख्या करूँगा। इस समय केवल मानवता का एक अंग यह है 'कि अपने शरीर और मन पर नियन्त्रण रखना।'

यह नियन्त्रण इस कारण नहीं रहता है कि मानव की इच्छा में मेरा और तेरा पना है। मेरा, तेरा पना इस शरीर में रहते हुए यह सांसारिक अवस्था में न कभी गया और न जा सकता है। हाँ! सत्संग द्वारा विवेक और समझ आ जाने से मेरे तेरे पने का सम्बन्ध छूट सकता है। किन्तु व्यवहार में मैं तू के विचार को छोड़ना नितान्त असंभव है, क्रियात्मिक रूप से।

चूँकि मेरा लेख जगत कल्याण के विचार से है, इसलिये जो शब्द या उपाय वर्णन में प्रयोग कर सकता हूँ, करता रहता हूँ।

इसलिये मेरा अनुभव है कि लाख कोई आत्मिक अवस्था में रहे, यदि उसको इन नियमों पर चलने का अभ्यास नहीं जिससे कि वह अपनी व्यावहारिक अवस्था में ठीक रह सके, कोई लाभ नहीं होता,

बल्कि मैं तो वह कहूँगा कि जब तक कोई इन नियमों का पालन न करता हो, उसको आध्यात्मिक की ओर आना ही नहीं चाहिये।

दूसरा प्रश्न – ईश्वर भक्ति, खुदा परस्ती से बढ़कर मानवता कैसे श्रेष्ठ है?

मेरे निज अनुभवों ने सिद्ध किया है कि ईश्वर भक्ति मानवता की एक मानसिक भावना है। जहाँ जिस स्थान पर किसी का विश्वास है, उसके विश्वास के अनुसार मानव को आनंद, हर्ष, प्रसन्नता अथवा मनोकामनाएँ पूर्ण होती है।

जाकी रही भावना जैसी हरि मूरत देखी तिन तैसी॥

किसी ने उसको निर्गुण माना, किसी ने उसको सगुण। किन्तु अज्ञान वश विभिन्न दल एक दूसरे की पूजा, आराधना अथवा विभिन्न इष्ट होने के कारण उनमें परस्पर द्वेष ईर्ष्या और घृणा हो गई है। हिन्दू मुसलमानों के झगड़े, ईसाईयों और यहूदियों के उपद्रव व समस्त अन्य धर्मों के मतभेद जहाँ व्यक्तिगत रूप से किसी के लिये आनन्ददायक हुये वहाँ सामूहिक रूप में रक्तपात और उपद्रव उत्पन्न करते रहे।

इसलिये प्रत्येक प्रकार के खुदा या ईश्वर भक्त मनुष्यों के लिये मानवता की आवश्यकता है। यहाँ मानवता का दूसरा अंग यह है कि मानव के अन्दर विवेक, सच्ची समझ की शक्ति हो और यह सदैव सन्तों और फ़कीरों के सत्संग में मिलेगी।

तीसरा अंग– जप और तप से बढ़कर मानवता क्यों हैं? इसलिये कि जप और तप से मानव की मानसिक वृतियों के एकत्रित होने से

उसकी संकल्प शक्ति बढ़ जाती है। साधारणतय: देखा गया है कि बड़े साधु, जपी, तपी अपने तप के बल से दूसरों को आप देते रहते हैं और उनकी अपनी और दूसरों की हानि होती रहती है हिन्दू जाति के शास्त्रों में इस का उल्लेख है। इसलिये जपी, तपियों को मानवता पहले आनी चाहिये। ''अहिंसा परमोधर्म:'' किसी का हानि करने का विचार न रखना ही मानवता है।

मानवता के सीखने के लिए यह अनिवार्य है कि मानव किसी पूर्ण पुरुष का सत्संग करे, जिससे कि उसको उसकी क्रियात्मक रहनी से और सत्संग से पहले जीवन बिताने का सच्चा मार्ग मिले। प्राचीन समय में बच्चों को ऋषि आश्रमों में और गुरुकुलों में भेजते थे। अब वह समय नहीं रहा। मैंने इस कमी को अनुभव किया और मानवता की पुकार की ओर एक ऐसा चिन्ह छोड़ चला हूँ जिस पर भावी सन्तान संभव है चले।

सन्त कबीर ने तो अपने शब्द में मानवता के नियम बताने में जो कमाल किया है, उसकी प्रशंसा मैं कौन हूँ जो कर सकूँ। शब्द यह है–

अब मैं भूला रे भाई, मेरे सत्गुरु जुगत लखाई।
किरिया कर्म आचार मैं छोड़ा, छोड़ा तीरथ का नहाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना॥ १॥

ना मैं जानूँ सेव बंदगी, ना मैं घंट बजाई।
ना मैं मूरत धरी सिंघासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई॥ २॥

जो यह मूरत मुख सेबोले, कर असनान न्हवाई।
पाँच टका हूँ देत ठठेरे, एकहि हों ले आई॥ ३॥

ना हरि रीझे जप तप कीन्हे, ना काया के जारे।
ना हरि रीझै धोती छोड़े, ना पाँचों के मारे॥ ४॥

दाया राखि धरम को पालै, जग से रहे उदासी।
अपना सा जीव सब को जानै, ताहि मिले अविनासी॥ ५॥

सहे कुसबद वाद को त्यागे, छोड़े गर्व गुमाना।
सत्त नाम ताही को मिलि है, कहै कबीर सुजाना॥ ६॥

इस में दो कड़ियाँ पूर्ण मानवता के नियमों को व्यक्त करती है–

काया राखि धर्म को पालै, जग से रहे उदासी।
अपना सा जिव सबको जानै, ताहि मिलै अविनासी॥

सहे कुशब्द बाद को त्यागे, छोड़े मान गुमाना।
सत् नाम ताही को मिलि है, कहै कबीर सुजाना॥

इससे अधिक और कोई मानवता नहीं है। इस समय लाखों नामधारी हैं। मैं भी हूँ। नाम की प्राप्ति क्या है?

लोक अलोक पाऊँ सुख धामा।
चरण, शरण दीजै विश्रामा॥

वास्तविक नाम चौथे पद में है। जो त्रिलोकी से परे है। किन्तु जब तक मानता ही नहीं, नाम कहाँ मिलेगा? जब तक मानवता ही नहीं है, लोक नहीं सुधरता। इसलिये मेरे अनुभव में सर्वश्रेष्ठ मानवता है।

मेरा कर्म भोग था। अहा! दाता दयाल के शुद्ध स्वरूप का संस्कार था, इसलिये काम कर दिया है। यद्यपि मैं जानता हूँ इस नक्कार खाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है। किन्तु मेरी इच्छा सुनाने की है। कर्म भोग है, कर्म करना मेरा काम है। फल किसी और के हाथ में है।

नोट : मित्रो! मानवता से मैं भी कभी-कभी गिरता हूँ, किन्तु वह मेरी गिरावट केवल कुछ सैंकिडों के लिये, मानसिक रूप से होती है। चूँकि दाता दयाल का संस्कार है। वह संस्कार तुरन्त ही सहायता करता है। इसलिये साहस करो ''मनुष्य बनने'' का प्रयत्न करो। गिरावट आती ही रहती है।

मार्ग चलते जो गिरे, ताहि न लागे दोष।
कहे कबीर बैठा रहे, ता सिर करें कोस॥

यह सूरमाओं का काम है। सुरत चढ़ा लेनी सुगम है। मैं इतना साधन करता हूँ कि मेरी सूरत बोदी (तालू) के स्थान पर अधिक देर तक ठहरती है किन्तु चूँकि मेरा व्यवहार है, कर्त्तव्य है, इसलिए सावधान रहता हूँ। इन अनुभवों ने विवश किया कि कह जाऊँ कि अध्यात्म, ध्रुपद, से बढ़कर शरीर, मन और आत्मा में रहते हुए मानवता श्रेष्ठ है।

आदमी तो आप हैं और इसमें क्या शक है मगर।
दो घड़ी के वास्ते, इन्सान बनकर देखिए॥

खुदा तो मिलता है, इन्सान ही नहीं मिलता।
यह बात वह है, जो देखी कहीं कहीं मैंने॥

न हिन्दू ही बन, ना मुसलमान बन।
मैं कहता हूँ भाई कि इन्सान बन॥

नगमये पीरे मुराँ।

हम नहीं आये यहाँ तेरी इबादत करने।
हाँ! तेरे बन्दों की हम, आये हैं खिदमत करने॥

दीनो ईमान की बातें, न सुना शेख़ हमें।
कौन है तू जो यहाँ आया नसीहत करने॥
इश्क से पूछा कि आने की, गरज़ क्या थी तेरी।
बोला वह होश को और, अक्ल को रूख्सत करने॥
हिर्स दुनिया की गई, दिल में कनाअत आई।
कौन अब जाये खुदा, की भी समाजत करने॥
कोई दुनिया के ग़मो दर्द से, पामाल हुआ।
कोई आया है यहाँ, ऐशो मुसर्रत करने॥
हरमो दैर में बैठे हैं, यह जाकर दोनों।
ब्रहमन मूंडने और शेखं हजामत करने॥
काम करते हैं सब, पर ग़रज नहीं हमको।
हम तो आये हैं पीरेमुग़ां, तेरी सौहबत करने॥
जब बुला भेजते हैं, आप खुद आ जाता है।
जब नहीं चाहते, वह दूर चला जाता है॥
मकर का दिल में, ख्याल आया तो शैताँ बने।
जब खुदा की है हबिस, दिल में खुदा आता है।
मंज़रे कौनो मकां सब हैं ख्याली जलवे।
वहम है जो कि, तमाशे हमें दिखाता है॥
जब सबक देने को बैठे, तो हैं उस्तादे रफ़ीक़।
हुए शागिर्द तो पढ़ने में, मजा आता है॥
आँख खोली तो सहर, बन्द किया शाम है तब।
साँग क्या यह दिले दाना, भी अजब लाता है॥
जाम मस्ती का पिलाता है, अजब 'पीरेमुगाँ'।
आके सतसंग में सुनो, मिट जायें सब वहमो गुमां॥

चौथा पद

॥ लेखक : परम दयाल जी महाराज॥

मालिक करे कोई खब्त मानव पर सवार न हो। किन्तु जीवन बिना खब्त के रह भी नहीं सकता। मुझे बचपन से उस मालिक सर्वाधार के मिलने की लालसा थी। 78 वर्ष से इस लाइन में चलता आ रहा हूँ। चूँकि प्रण किया था कि अपना अनुभव बता जाऊँगा, इसलिये कर्म भोग वश या मौजाधीन मैंने काम किया है।

इस अपनी खोज या खब्त को पूरा करने के लिए दाता दयाल जी ने मुझे चौथे पद का संकेत किया। उनके बहुत से पत्र जो उन्होंने मेरी उन्नति के लिये लिखे, उनमें चौथे पद का संकेत है।

चौथे पद में बास कर, छौड़ तीन का तन्त।
आस का कर दे अंत अब, यह बसंत बस अंत॥

सतपुरुष राधास्वामी दयाल की शिक्षा चौथे पद की है।

तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा। सत् नाम सतगुरु गति चीन्हा॥

चौथे पद का संकेत कबीर साहब की शिक्षा में भी है। श्रीमद्भागवत गीता में भी चौथे पद का उल्लेख है और यही संकेत ग्रन्थ साहब में विद्यमान है।

चौथा पद क्या निकला? मानव का जीवन या उसका 'हैपना' सदैव चार पदों में रहता है। पद का अर्थ है अवस्था श्रेणियाँ, सोपान आदि।

पहला पद जो मानव अपने अन्तर केवल एक अस्तित्व का विश्वास रखने वाला है। वह एक पद का वासी है अर्थात् जो एक अस्तित्व के अतिरिक्त दूसरे अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, न उसकी सुरत दूसरी ओर जाती है।

दूसरा पद जिस मानव की सुरत दो अस्तित्वों को स्वीकार करती है ब्रह्म या माया, शिव या शक्ति। प्रथम पद में वेदान्ती अद्वैतवादी आते हैं। द्वितीय पद में द्वैतवादी सम्मिलित हैं।

तीसरा पद जो तीन को मानते हैं। अर्थात् ईश्वर, जीव और प्रकृति। अनेक ऐसे भी हैं, जिनका विचार अनेक वाद की ओर रहता है। किन्तु वह वास्तव में तीन में ही रहते हैं। क्यों? इसलिए कि प्रत्येक मानव की सुरत एक समय में एक ही विचार लेती है, यद्यपि वह एक सैकिन्ड में अनेक विचार लेता रहता है। किन्तु वह एक समय केवल एक ही विचार का अभ्यासी होता है।

मेरा जीवन इन तीनों अवस्थाओं से बीतता हुआ आ रहा है। जीवन के अनुभव ने अब विवश करके मुझे चौथे पद में ढकेला। प्रत्येक पद में अनेक शाखायें हैं। उदाहरण तथा एकत्व अर्थात् एक पद को ले लो। कभी मेरी सुरत केवल राम ही को मानकर उसमें लगी रही। फिर कृष्ण में आयी, फिर दाता दयाल के रूप के साथ लगी। फिर प्रकाश को ही सत्य माना। तत्पश्चात् सत्य को ही सत्य जाना यह जितनी मेरी सोपानें थीं अद्वैत पद की थीं और यह अद्धैत जिस समय भी, जिस अवस्था में था, मुझको प्राप्त होता रहा। ऐसे ही जो दो पद को मानने वाले हैं वह एक वस्तु की दो आकृति तथा रूप मानकर उनके साथ लगे रहते हैं। तीसरे पद वाले एक समय में प्रकृति की

अनेक शक्तियों का सहारा लेते हैं। जैसे कि एक व्यक्ति है, जो एक काम करता है। उसकी अपनी संकल्प शक्ति साथ है वह अपनी निर्बलता के कारण दूसरे का सहारा लेता है और दूसरों से सम्मति भी लेता है यह हैं अनेक शक्तियों का सहारा लेना।

मानवीय जीवन इन तीनों पदों के संघर्ष में रहता है। कभी मैं भी स्वयं इस संघर्ष में रहा हूँ। जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये पापड़ बेले। कभी एक वाद में, कभी द्वैत में और कभी उसको क्षणमात्र को शान्ति मिलती है और कभी नहीं मिलती। अद्वैत में, कभी कभी शान्ति मिली, किन्तु वह स्थायी न रही।

अब इस आयु में दाता दयाल जी की दया से साधन अभ्यास के कारण इस झंझट से निकल गया। वह कैसे? आचार्य पद पर आने से ज्ञान हो गया कि जिस प्रकार मानसिक सहारे में लेता था, वह मेरा अपना कल्पित था। फिर शब्द और प्रकाश का सहारा लिया। अनुभव ने बताया कि शब्द और प्रकाश का उत्पन्न करने वाला मैं आप था। इस ज्ञान ने मुझे अपने-आप की शान्ति और सहारा लेने के लिये विवश किया कि मैं इन सबको छोड़ जाऊँ। इन सबको छोड़ जाने के पश्चात् एक ऐसी अवस्था आती है जहाँ मुझे समस्त जीवन अर्थात् एकत्व, द्वैत और अद्वैत के सहारे की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इसलिये मैं अपने जीवन और अस्तित्व दोनों को छोड़ कर अनामी हो गया। अब जो कुछ मेरा अनुभव है, इसको संसार के व्यक्ति सुनकर मुझे पतित या पथ भ्रष्ट जान कर मुझसे घृणा करेंगे। इनके इस सन्देह को दूर करने के लिए मैं राधास्वामी दयाल की वाणी सुनाता हूँ।

काल रची त्रिलोकी सारी। दयाल रचा सतलोक सम्हारी।

तीन लोक काल का थाना। चौथा लोक दयाल स्थाना॥
काल दिया जीवन को धोखा। चौथे पद से सबको रोका॥

आगे की कड़ियाँ स्वयं आप पढ़ लें। दयाल पद क्या है? स्वामी जी इसी शब्द में वर्णन करते हैं–

संतन का कोई भेद न जाना। सन्त मता रहा गुप्त छुपाना॥
संत मता खुलकर अब गाऊँ। देकर कान सुनो समझाऊँ॥
नहीं पाताल नहीं मृत्यु अकासा। पाँच तत्व नहीं निर्गुण स्वांसा
नहीं शिव शक्ति न पुरुष प्रकृति। ज्योति निरंजन नहीं प्रकृति॥
तारा मंडल सूर्य न चन्दा। पिण्ड ब्रह्माण्ड रचो नहीं अंडा॥
कुरम न शेष नहीं ओंकारा। माया ब्रह्म न ईश्वर धारा॥
आत्म परमात्म नहीं दोई। सुन्न महासुन्न रचा न सोई॥
अल्लाह खुदा रसूल न होते। पीर मुरीद न दादा पोते॥
वेद, कुरान, पुरान न होते। मसजिद काबा बाँग न देते॥
नहीं त्रिकाल संध्या न नमाज़ा। तीरथ व्रत नियम नहीं रोज़ा॥
करमी थे शरई नहीं भाई। जोगी ज्ञानी खोज न पाई॥

दूसरा प्रमाण दाता दयाल जी की वाणी है–

सजन केई साँची बात न कहे॥ टेक॥

योगाचार योग रस माते, छनक ज्ञान छन भंगी।
मध्यम वाले मध्य समाने, सुन्न वाद सर्वङ्गी॥
साँख्य गिनावे गिनती सबकी, योग समाधी गावे।
वेद अन्त वेदान्ती की आशा, कर्म में कर्मी फंसावे॥
जैसी मन की भई कल्पना, तैसा खेल खिलाया।
खटपट में खट दर्शन भूलें, अंत मिला क्या छाया॥

पूरा खेल किसी का नहीं, खेले खेल खिलाड़ी।
किसको बताऊँ पंडित मूरख, किसको ज्ञानी अनाड़ी॥
गुरु की दया साधु की संगत, सार तत्व लख पाया।
राधास्वामी चरन कमल गहे, छूटी माया छाया॥

खोज थी। दाता दयाल (राधास्वामी) के चरण कमलों में गया। उनकी दया से, साधुओं की संगत मिली। उनके अनुभवों ने मुझे यहाँ पहुँचा दिया। कर्म भोग था। अपना अनुभव कह चला। जीवन का ध्येय पूरा हो गया।

सोचता हूँ क्या मेरी जात से किसी को लाभ पहुँच सकता है। हाँ, पहुँच सकता है। केवल रेडियेशन से, जो जिसका ध्यान करना है, जो जिसकी संगत करता है, वह उसी का रूप हो जाता है।

इसलिये इस झूठे संसार के कटाक्ष आदि से निर्भय होकर कहता हूँ। जो मेरा ध्यान करेगा, मेरी रेडियेशन लेगा, मेरी बातों पर विचार करेगा। वह अवश्य ही इस अंतिम अवस्था का संस्कार लेकर अपनी जात में या चौथे पद में पहुँच कर रहेगा। अवश्य रहेगा, यह प्राकृतिक नियम है।

मैंने एक चौथे पद में रहने वाले महापुरुष दाता दयाल महर्षि जी महाराज के शुद्ध स्वरूप से सम्बन्ध स्थापित किया था और आज निर्बन्ध हो गया। यह शब्द कि मेरा ध्यान करो, या सत्संग करो, या बातों को गुनो, इसलिये लिख रहा हूँ कि दाता दयाल जी ने मुझे यह काम सौंपा था। मैंने जो कहा है, सत्य कहा है। दाता दयाल जी ने एक शब्द में मुझे लिखा था कि फ़कीर मेरा ध्यान करते करते तू इस अन्तिम अवस्था में आ जायेगा और अपनी जात में गुम हा जायेगा चूँकि यह सत्य निकला इसलिये मैंने ऐसा कहा है।

चूँकि ज़ात से ही समस्त सिफ़ात पैदा होती है। इसलिए जो कोई किसी ज़ात में रहने वाले का ध्यान करेगा, विश्वास रखेगा, उसकी वह इच्छायें जिनका सम्बन्ध सिफ़ात से है, नियमानुसार पूर्ण होनी चाहिए।

क्या हुआ तुमको फ़कीरा, क्यों लिया है खब्त यह।
क्या अच्छा नहीं था तेरे लिये रहता जब्त में॥

बस में अपने कुछ नहीं है, मौज का यह खेल है।
मौज़ से आये यहाँ हम, मौज कराती मेल है॥

कल एक लेख लिखकर भेजा था, जिसका भाव था ''अध्यात्म से श्रेष्ठ मानवता है।'' एक व्यक्ति ने प्रश्न किया– पंडित जी! आज तक सब महापुरुष अध्यात्म को सबसे ऊँचा और श्रेष्ठ मानते आ रहे हैं। आपने यह क्या उलटा मार्ग ग्रहण किया। जनसाधारण आपकी बात को कैसे सुनेंगे।

इस व्यक्ति का प्रश्न सुनकर मैंने अपने अन्तर प्रवेश किया। अधिक समय तक सोचता रहा।

सुनो! संसार वालो! आत्मा! आत्मा! आत्मा! की ध्वनि और पुकार बचपन से सुनी। अध्यात्म की पुस्तकें पढ़ी। आत्मा क्या है? हमारा प्रकाश स्वरूप। जिसके अन्तर से शरीर के कारण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार उत्पन्न होकर हमारा जीवपना बनाते हैं और यह मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार की उत्पत्ति, कुछ तो उस प्रकृति के अनुसार होती है, जिससे हमारा शरीर बनता है। और कुछ प्रभावों के कारण चूँकि कोई व्यक्ति जब तक उसके मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सम

अवस्था में नहीं आते, वह अपने आपको प्रकाश स्वरूप में एकत्रित कर ही नहीं सकता और यदि किसी कारण वश वह कर भी ले तो जब उसका फिर उत्थान होगा वह अपने मन, चित्त,बुद्धि और अहंकार के खेलों में फँसकर विचलित हो जायेगा। शान्त नहीं रह सकता। इसलिये जन साधारण के लिए यह अनिवार्य है कि वह उन नियमों पर चलें, जिन से उनके मन, बुद्धि चित्त,अहंकार सम्मिलित अवस्था में रह सकें और इनको सम रखना ही मानवता है। जो व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के अन्तर्गत रहता है, उसके लिये अध्यात्म अर्थात् अपने आपको प्रकाश स्वरूप बनाना, महा कठिन है। यह करनी का मार्ग है, बातों का नहीं। चूँकि मुझे जगत कल्याण का कर्त्तव्य सौंपा गया है, इसलिये मैंने अपने खोज के परिणाम को देखकर पुकार की कि ''मनुष्य बनो''।

अब रहा प्रश्न महात्माओं का जो अध्यात्म को मानवता से श्रेष्ठ मानते हैं। जब मैं उस रहस्य या भेद को जो मुझे प्राप्त हुआ, समक्ष लाता हूँ तो मैं प्रतीत करता हूँ कि समस्त अध्यात्म की पुकार करने वाले महापुरुषों ने अध्यात्म की आड़ मे धन, धाम, डेरा, मान, प्रतिष्ठा रखी है। इसलिये मैंने साहस करके सत्यता को व्यक्ति किया है। सच्चाई कड़वी होती है किन्तु इस समय भारत वर्ष की उन्नति इसी बात में है कि जन साधारण का रूझान धर्म और पन्थों की अपेक्षा मानवता की ओर लाया जाये।

अध्यात्म अपने आप को प्रकाश स्वरूप बनाने के अतिरिक्त जो कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं है और कुछ नहीं, ऐसा करने के लिए इन नियमों का पालन करना अनिवार्य है जिनको मैं मानवता के नियम मानता हूँ।

यदि कोई व्यक्ति मेरे इन शब्दों को अध्यात्म से बढ़कर मानवता है, नही सुनना चाहता तो वह यह समझ ले कि अध्यात्म से मानवता पहले है। जब मानव आत्मा और अध्यात्म से परे की अवस्था का साधक हो जाता है उसके लिये यह संसार ही नहीं रहता। राधास्वामी दयाल की वाणी है।

''अरे मन देख कहाँ संसार। झूठे भ्रम हुआ बीमार॥''

जब वह अवस्था आ जाती है वहाँ मानवता का क्या काम। मानवता का सम्बन्ध केवल मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार जब तक विद्यमान हैं तब तक है। यदि एक व्यक्ति उस अवस्था को जिसे अध्यात्म या अध्यात्म से परे कहा जाता है प्राप्त भी करले तो भी चूँकि वह सदैव शरीर रखता हुआ उस स्थान अर्थात् उस अवस्था में नही रह सकता, उसको भी मानवता की आवश्यकता रहेगी। इसलिये मेरा अनुभव है कि जनसाधारण के लिये बल्कि महापुरुषों के लिये भी जब तक जीवन है, मानवता ही श्रेष्ठ है।

अध्यात्म प्रत्येक समय आदि से अन्त तक मानवता के सहारे चलता है। जहाँ मानवता का आसरा टूटा, अध्यात्म मुँह के बल गिरा। जो वस्तु किसी दूसरे के आसरे पर स्थित है उससे आसरा श्रेष्ठ है, इससे सिद्ध हुआ कि मानवता अध्यात्मक से श्रेष्ठ है।

कलामे दाता दयाल

मिटो जो दिल की तमन्ना, तो बादशाह हुये।
गई जो चाह तो, बा इज्जत और जाह हुये॥

गुलाम दुनिया के हैं, जिन को है हविस का ख्याल।
हविस क हाथों से, वह देख लो तबाह हुये॥

जो मुझ पै जानो दिल से निसार होते हैं।
मैं उनका हूँ वह मेरे यार गार होते हैं॥

इबादत और रियाजत का वहम है जिनको।
जुदा हैं मुझ से वह और बर किनार होते हैं॥

मुबारक हैं वह जो बेकस को बेबस को बचाते हैं।
मुबारक हैं जो औरों के जहाँ में काम आते हैं॥

यह दुनिया चन्द रोज़ा है, कहाँ इसको बक़ा हासिल॥
जो आज आए हैं, इसजां कल वह इसको छोड़ जाते हैं॥

ख़ल्के खुदा की खिदमत क्या खूब है कमाई।
दिन ढल चुका है बिलकुल ले देख रात आई,
जाये न कर तू हरगिज़ यह वक्त कीमती है॥

यह वक्त कीमती है सांई की सुन सदा को,
कर तर्क खुद पसन्दी और याद कर खुदा को।
कर अखत्यार दिल से, तसलीम को रज़ा को,
जाये न कर तू हरगिज़ यह वक्त कीमती है॥

वे दिल हुए तो दिल का, तमाशा दिखा दिया।
जब अहले दिल हैं, वहम को दिल से हटा दिया॥

मरते रहे अजंल के, तत्सवुर में बारबार,
जिन्दा हुए तो नामे, अजल को मिटा दिया॥

खुश दिली हासिल हुई, 'पीरेमुरां' के जाम से।
काम की जानिब है रुख़ और काम अपने काम से॥

जड़ चेतन की ग्रन्थी

॥ लेखक : परम दयाल जी महाराज ॥

जड़ चेतन की ग्रन्थी दूर करने के लिए साधन, अभ्यास से काम लिया जए। साधना साधना ही है। वह स्वयं ध्येय या लक्ष्य नहीं है। साधन और लक्ष्य में पृथ्वी आकाश का अन्तर होता है। जो व्यक्ति यह समझते हैं कि साधन करने से मुक्ति मिलेगी, वह अत्यंत त्रुटि पर हैं। साधना का अभिप्राय केवल इतना है कि मन मन से समस्त प्रकार के संदेह, संशय, शंका, भ्रम, चिन्ता आदि दूर हो जाये। बल्कि मन का दर्पण प्रकाशवान बन जाये। तत्पश्चात स्वयं वास्तविकता का प्रतिबिम्व मानव के मन में पड़ने लगेगा। जब तक साधन नहीं है तब तक अनुभव भी नहीं है। जब तक अनुभव नहीं है, तब तक ज्ञान नहीं है। जब तक ज्ञान नहीं होता, तब तक जड़ और चेतन की ग्रन्थी भी नहीं खुलती। इसलिये कुछ दिनों गुरु की संगत करें, जिससे कि उनका प्रेम और प्रतीत मन में स्थित हो जाये। दोनों के मन एक समान हो जाये। तब सुमिरन, ध्यान, भजन से निरंतर सम्बन्ध रखा जाये। अभ्यास करते हुये गुरु का ध्यान दृढ़ हो जाये। तब उसका जीवन गुरु का जीवन हो जायेगा। जिससे सम दृष्टिता आप ही आ जायेगी। समता की दशा का आना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे कि भटकना न पड़े। इसका नाम जीवन मुक्त अवस्था है। जब यह घनिष्ट हो जाती है उस समय विदेह मुक्ति आप ही आप आ जाती है उस समय विदेह मुक्ति आप ही आप आ जाती है और वह निजधामी हो जाता है। जब

तक मनुष्य में यह अवस्था न आ जाये अचिन्ता कभी नहीं आती। अचिंत और निर्भयता का आना ही जीवन का लक्ष्य है।

शुक्रवार 4-9-64 को श्री चमनलाल फोरमैन की बंगाल की ओर विदाई पर मानवता मन्दिर होशियारपुर में सत्संग

आज सत्संग का कोई कार्यक्रम नहीं है। चूँकि श्री चमन लाल जी ने यहाँ 1½ वर्ष मानवता मन्दिर के निर्माण तथा अन्य कार्यों में निष्काम और सच्चे हृदय और प्रेम से पर्याप्त सेवा की है, इसलिये यहाँ के कुछ मित्रों ने उनको विदाई दी है। उन्होंने क्यों यह सेवा की, मुझे उनके भाव का कोई पता नहीं है। आज 9 वर्ष हुये जब मैं दशहरे के सत्संग के लिए देहली जा रहा था तो यह अपने परिवार सहित लुधियाना स्टेशन पर गाड़ी में मिले थे। उन्होंने हमारे सबके लिये भोजन का प्रबंध किया था। तत्पश्चात यह बदल कर होशियारपुर आये। यहाँ मास्टर मोहनलाल जी के निवास स्थान पर सत्संग होता था। यह आते रहते थे।

यह मुझ से प्रेम करते हैं। सोचता हूँ, यह मुझ से क्यों प्रेम करते हैं? संभव है इन्होंने दातादयाल जी का साहित्य पढ़ा हो और मुझे महात्मा, साधु, सन्त या गुरू मानकर प्रेम करते हों। क्योंकि शब्द, सन्त, महात्मा और गुरू मैं कुछ ऐसा मंत्र, प्रभाव और गुण भरा हुआ है कि जनसाधारण ऐसे पुरुष को, जिसके साथ यह उपाधि लगी हुई है , आदर और मान की दृष्टि से देखते हैं और सेवा भाव उन के मन में उत्पन्न होता है।

मैं सोचता हूँ कि ऐ फ़कीर! तेरे नाम के साथ भी यह उपाधि साधु, सन्त या सत्गुरु आदि की लगी हुई है। इस व्यक्ति ने तुमको साधु,

फ़कीर समझ कर अपने कर्त्तव्य का पालन किया। तू बता, इसकी सेवा के बदले में क्या दे सकता है?

सुनो चमनलाल व अन्य मित्रो! जो यहाँ उपस्थित हैं तथा अन्य साधु सन्तों की सेवा करने वालो सुनो! ध्यान पूर्वक सुनो! कान खोलकर सुनो! यदि अपनी ओर से कहता हूँ तो आप लोगों को संवभवतः विश्वास न आये। संत कबीर का शब्द सुनो!

बंदी छोर कबीर भक्ति मोहि दीजिये।
बांहि गहे की लाज, गहर मत कीजिये॥ १ ॥

कागा बरन छुड़ाइ, हंस बुधि लाइये।
पूरन पद को देव, महा सुख पाइये॥ २॥

जा तुम सरनै आयौ, वचन इक मानिये।
भौ सागर बहै जोर, सुरत निज राखिये॥ ३॥

दसों द्वारा बेकार, नवों नाटिका बहै।
सुरत नहीं ठहराय, लगन कैसे लगै॥ ४॥

जैसे मीन सनेह, सदा जल में रहै।
जल बिन त्यागै, प्रान लगन ऐसी लगै॥ ५॥

मेटौ सकल विकार, भार सिर लेइयो।
तुमहि में रहौ समाइ, आपन करि लेइयो॥ ६॥

कहैं कबीर विचारि, सोई टकसार है।
हंस चले सतलोक, तो नाम अधार है॥ ७॥

शिष्य बंदी छोर गुरू से प्रार्थना करता है कि उसका कल्याण हो। परम सुख और परम पद मिले। यह तभी हो सकता है जब शिष्य

अथवा जिज्ञासु की काग (कोआ) की बुद्धि चली जाये और हंस गति आ जाये।

जब तक किसी प्राणी की यह अवस्था नहीं आती है, उसका कल्याण असंभव है। संत कबीर का वाणी यही संकेत करती है। काग बुद्धि को छुड़ाना और हंस गति का देना ही सच्चे साधु, महात्मा सन्त या सत्‌गुरु का कर्त्तव्य है।

सुनो एक अपना उदाहरण देता हूँ। सन् 1940 में जब मैं नौकर था। मेरे पिता जी पैंशन पर जा रहे थे। वह रेलवे पुलिस में कर्मचारी थे। मुझे कहने लगे पुत्र! मैं घर जा रहा हूँ, तुम्हें कुछ शिक्षा देता हूँ। प्रथमः किसी रेलवे कर्मचारी जो सदैव बिना टिकट यात्रा करने के अभ्यन्त होते हैं उनसे किराया मत लेना। द्वितीयः किसी पुलिस वाले का विश्वास मत करना। किन्तु शत्रुता तथा मित्रता दोनों से पृथक रहना। तृतीयः जिस स्टेशन पर हो वहाँ के 10 नम्बर के बदमाशों से कभी शत्रुता मत रखना। चतुर्थः अपने छोटे भाई राय साहब सुरेन्द्र नाथ के सम्बन्ध में थी।

उन्होंने मुझे जो कुछ आदेश दिया, वह मेरी प्रकृति और मेरी स्थिति और युग की परिस्थितियों का अनुमान लगाकर दिया। मैं ईमानदारी, सच्चाई, ईश्वर भक्ति (संसारी दृष्टि से) के विचार वाला था। मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया। मुझे जीवन में कोई किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। जहाँ रहा, मेरा बड़ा आदर मान हुआ, सबसे प्रेम और प्रीति रही।

इसी प्रकार ऐ चमन लाल! चूँकि मैंने 70 वर्ष अपने जीवन के सुख, शान्ति, आनन्द, परम पद आदि की खोज में बिताये हैं और

अपने निज अनुभव के आधार पर इस कर्त्तव्य से निवृत होना चाहता हूँ, जो एक सच्चे फ़कीर, साधु, महात्मा, सन्त या गुरु का है ।

काग वरन क्या है? कौआ बहुत चालाक और चतुर होता है। नौकरी का अनुभव मुझे अधिकांश है। 36 वर्ष सरकारी नौकरी की है। 9 वर्ष प्राईवेट फर्म में कर्मचारी रहा हूँ।

जो प्राणी सावधानी में अति बढ़ जाता है अर्थात् अति अधिक सचेत होता है। उसके चित्त में शान्ति नहीं रह सकती है। प्रत्येक समय उसे किसी न किसी प्रकार कर डर, भय रहता है। इसलिये जीवन सचेत और सावधान रहे, किन्तु साधारण रीति से। अपने काम से काम, काम का ध्यान, इससे आगे दृष्टि न जाये। तुम सुखी रहोगे।

काग बुद्धि दूसरी यह है कि वह सदैव दुर्गन्ध पर बैठता है। सबसे बुरी दुर्गन्ध दूसरों के अवगुण ओर दोष देखना है ।

मत देख पराये औगुन। क्यों पाप बढ़ावे दिन-दिन॥ १॥
पर जीव सतावे खिन-खिन। छोड़ अपने औगुन गिन-गिन॥
मक्खी सम मतकर भिन-भिन। नहिं खावे चोट तू छिन-छिन
देखा कर सबके तू गुन। सुख मिले बहुत तोहि पुन पुन॥ ४॥
मैं कहूं तोहि अब गुन-गुन। तू मान वचन मेरा सुन-सुन॥ ५॥
गति गाई मैं यह हंसन। यों वर्ण सुनाई सन्तन॥ ६॥
अब कान धरो इन वचनन। नहिं रोवोगे सिर धुनधुन॥ ७॥
यह बात कही मैं चुन-चुन। कर राधास्वामी चरन अस्पर्सन॥

दूसरे के दोषों की ओर देखने से मानव स्वयं दोषी हो जाता है। पारस्परिक कलह, कलेश, उपद्रव, घृणा, झगड़ा होने का भय रहता

है। मैं जो कहता हूँ, निज अनुभव कहता हूँ। बसरे बगदाद में 12 वर्ष रहा। वहाँ हमारे पंजाबी भाई मुझसे प्रेम करते थे। अनेक सज्जन माँस, मदिरा का पान करने वाले हो गये थे। वह अनेक बार मदिरा की मस्ती में आ जाते, मुझसे छाती लगाकर मिलते। मुझे मदिरा से घृणा थी, गंध से उल्टियाँ आ जाती थी। दातादयाल जी के सत्संग में गया और इन मदिरा पान करने वालों की शिकायत की दाता दयाल जी ने वर्णन किया फ़कीर तुम उनसे घृणा करते हो। तुम मदिरा पान करने वालों के सम्पर्क में आ गये। वही बात हुई।

वापिस भारतवर्ष आया। मदरसा स्टेशन पर स्टेशन मास्टर था। मेरे एक सहायक स्टेशन मास्टर जो शराबी और जुआरी थे उनकी नियुक्ति मेरे यहाँ हुई। उन्होंने टिकट बेचे और सरकारी रुपया की चोरी की। छः मास तक उनके मुकद्दमे में दुखी रहा। क्योंकि स्टेशन मास्टर होने के नाते मुझे अपनी सच्चाई का प्रमाण देना था।

इसलिये ए चमनलाल, बंगाल में जा रहे हो। बंगाली, पंजाबी के विचार को भूल जाओ। बंगाली हमारे जैसे ही भाई-भाई है। अपने हृदय में प्रेम को स्थान दो। तुमको कोई आपत्ति नहीं होगी।

हंस गति क्या है? इन औगुनों को छोड़कर समझ, बूझ, विवेक के साथ उस सच्चे मालिक और सतगुरु के साथ सम्बन्ध स्थित रखना।

सच्ची समझ, बूझ और विवेक के प्राप्त करने के लिए साधु, महात्माओं, सन्तों ओर सतगुरुओं का सत्संग है। वास्तविक शान्ति ऐ चमनलाल! तेरे अपने पास है। तू स्वयं पूर्ण, शान्ति निर्वाण,परम पद का रूप है। तू ही नहीं है, प्रत्येक प्राणी है। किन्तु चूँकि हंस गति के न होने से उसे सत्य मार्ग नहीं मिला है, इसलिए सत्संग किसी बन्दी छोर का अनिवार्य है।

अधिक समय तक तुने मेरा सत्संग किया है। मैंने कोई कसर शेष नहीं छोड़ी है। परम शान्ति और परम सुख मानव के अपने अन्तर है। जब तक बाह्य सम्बन्धों में मानव फँसा हुआ है। वह अर्न्तमुखी हो ही नहीं सकता। मौज के तुम्हारे साथ एक खेल खेला था। तुम्हारे सगे भाई ने तुमको छुरा मारा था। याद है। क्योंकि वह तुमसे मकान लेना चाहता था। तुमने मेरे कहने पर भाई को क्षमा किया था और मुकद्दमा नहीं चलाया था। किन्तु यह जा कुछ हुआ था, तुमको ज्ञान देने के लिए हुआ था–

किसकी हमदर्दी कहाँ, दुनिया में है उसका निशां।
कौन कब साथी हुआ, आते हुए जाते हुए॥

कौन है यहाँ जो किसी का है। सब अपने अपने स्वार्थ के साथी हैं। इसलिए सदैव विश्वास रखो कि कोई भी किसी का नहीं है। सब संसार स्वार्थ का है। जीवन बिताने के लिए यही रहस्य है कि प्राणी अपने पाँव पर खड़ा होने का प्रयत्न करे। दाता दयाल जी ने मुझे यही मंत्र दिया था। फ़कीर! अपनी जीविका आप कमाना। किसी के आश्रित मत रहना। मैं इस समय तक अपनी जीविका कमा लेता हूँ। पुत्र धनवान है, कभी विचार तक नहीं आया कि वह मुझे कुछ दे।

अपनी करनी, आप भरनी, अपनी करनी पार उतरनी।

इसलिए सदैव अपने पुरषारथ पर भरोसा रखकर जितना मौज दे, उसके अनुसार अपने जीवन को अनुकूल बनाओ। चमनलाल! तुम जा रहे हो। बाल-बच्चे तुम्हारे होशियारपुर में रहेंगे। देखो, मौज ने जिसको उत्पन्न किया है, वह उसका प्रबन्ध स्वयं करती रहती है। तुम कौन हो जो किसी को कुछ दे सकते हो? प्रत्येक व्यक्ति दुख सुख

अपने कर्म के अनुसार भोगता है। प्रकृति उसकी सदैव सहायता करती रहती है। तुम अचिन्त होकर जाओ।

होशियारपुर में मैं हूँ। स्वामी प्रयागलाल हैं। हम चाहते हैं कि मालिक वह दिन न लाये कि हमको तुम्हारे बाल-बच्चों की सहायता करनी पड़े। जो व्यक्ति यह चाहता है कि वह किसी के दुख दर्द में सहायता करे, उसका विचार दूसरों को, आश्रित, रोगी और भिखारी बनायेगा। सुनो! मैं क्या कह रहा हूँ।

देश के भीतर चिकित्सकों और वैद्यों की उपस्थिति बीमारी व रोग उत्पन्न करती है। तुम संभवतः न समझो, एक सच्चा उदाहरण देता हूँ। 5 वर्ष हुये सुन्दरदास अपनी धर्मपत्नी सहित मेरी सेवा करने के विचार से होशियारपुर आये। मेरे घर में मेरी स्त्री थी। वह कैसे सुन्दरदास की स्त्री का घर का काम काज करना, मेरी रोटी पानी करने की आज्ञा देती। उसको मैंने नगर में किराये पर मकान ले दिया। चूँकि सुन्दर दास और उसकी स्त्री की प्रबल इच्छा थी कि वह मेरी सेवा करें। मैंने कहा सुन्दरदास, इस विचार को छोड़ो। वरन तुम मुझको बीमार करोगे। किन्तु अज्ञानी जीव कब बात को समझते हैं। अब क्या था। मुझे बुख़ार और जुकाम हुआ। दिन में वह दो या तीन बार काढ़ा पिलाते और चूँकि मैं कार्यालय में काम करता था, वह वहाँ मेरी सेवा करते। जब उनको समझाया तब उन्होंने विचार को छोड़ा और मैं स्वस्थ हो गया।

गुरु भक्ति, गुरु सेवा, केवल इतनी ही है कि सत्संग में बैठकर रहस्य को समझो, विवेक और ज्ञान को प्राप्त करो और उसके अनुसार जीवन बिताओ।

यही बात इस संत कबीर के शब्द में है। गुरु या महात्मा क्या करता है? मानव की काग बुद्धि छुड़ा कर हंस गति दिला देता है।

अब रहा तुम्हारे निर्वाण, परम पद, परम गति का प्रश्न। जब तक तुम्हारी सुरत अपने अन्तर अपने ही आप, अपनी ही जात में नहीं ठहरेगी, परम गति असंभव है। जिस मालिक या सत्गुरु का तुम ध्यान करते हो यदि उसको होशियारपुर 18 रेलवे मंडी या मानवता मन्दिर का समझोगे तुमको ऐ चमनलाल किसी दशा में भी वह परम गति नहीं मिलेगी।

केवल इस विश्वास की आवश्यकता है कि वह मालिक ज़ात, तुम्हारी ही अपनी ज़ात है। तुम उससे पृथक नहीं हो। जब यह अटल विश्वास हो जायेगा फिर काम बन जायेगा। इस विश्वास के पश्चात् फिर किसी सुमिरन, ध्यान भजन की आवश्यकता नहीं है। यह सुमिरन, ध्यान भजन आनन्द के लिये हैं और सत्संग ज्ञान प्राप्त करने के लिये हैं।

देखो! स्त्री का विवाह हो जाता है। उसको अपने सुहागवती हो जाने का विश्वास हो जाता है, जब वह उस विश्वास या सुहागवती होने का बोध मान करके आनन्द या प्रसन्नता लेती है। क्या वह अपने पति की मूर्ति का ध्यान करती है या उसका नाम लेती है? स्त्रियाँ सत्संग में हैं। इनसे पूछो।

बस यह सत्संग किसी बन्दी छोर का इसलिये अनिवार्य है कि मानव की बुद्धि स्वच्छ हो जाये और हंस गति मिल जावे। फिर मानव अपनी सुरत को अपने आप, अपनी ज़ात में ठहराता हुआ इस संसार से जब चोला छोड़ेगा, वह अपनी ही ज़ात में लय हो जायेगा।

अभी तुम्हारा इसका समय नहीं आया है। प्रारब्ध कर्म विद्यमान है। चलते चलो।

कर से कर्म करो विधि नाना। मन राखो जहाँ कृपा निधाना॥
हाथ काम की ओर। सुरत अपने इष्ट की ओर॥

राधास्वामी तुम्हारी अपनी ज़ात है। चूँकि अभी भ्रम, शंकाएँ संसार की इच्छायें हैं। चलते चलो। यदि किसी के आशीर्वाद, शुभ भावना में कोई शक्ति होती है, तो मैं सच्चे हृदय से चाहता हूँ कि तुम्हारा लोक और परलोक दोनों सुख शान्ति से बीतें। और अन्त में अपनी ज़ात में लय हो जाओ।

यह घड़ी मैं अपनी तुमको देता हूँ। यह मेरे प्रेम प्रीत का चिन्ह है। तुमको मेरी याद दिलाती रहेगी और कभी कभी याद आती रहेगी कि बाबा फ़कीर ने घड़ी देते समय क्या कहा था।

यह एक पुस्तक चहल दुरवेश मुन्शी सूरज नरायन मेहर की लिखी हुई मेरे मित्र पं. पुरुषोत्तम दास आपकी भेंट करते हैं।

सुनो चमनलाल! अथवा अन्य सज्जनों! जीवन के अनुभव के पश्चात् कहना चाहता हूँ कि इस संसार में यदि कोई मानवीय जीवन को स्थायी, सुख, शान्ति और निर्वाण आदि दिला सकता है तो वह कोई बंदी छोर कबीर जैसा पुरुष ही हो सकता है।

ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा, देवी, देवता, ब्रह्म, पारब्रह्म, सत्पुरुष, अलख, अगम तक जितनी भी शक्तियाँ प्रकृति में हैं यह सब संसार का खेल करती रहती हैं और सुरतें, आत्मायें, जीव जन्तु, गन्धर्व अथवा अन्य रचना बनती हैं। और सब इसी खेल में दुख, सुख आनन्द, हर्ष, शोक सब कुछ होता रहता है। किन्तु इस खेल से बचाने वाला या खेल को श्रेष्ठ बनाने की सच्ची मति दे सकता है। हैं तो वही समस्त शक्तियाँ किन्तु वह सब किसी मानवीय चोले द्वारा ही सच्चा मार्ग

प्रवृत्ति और निवृत्ति का बता सकता है। इसलिये किसी निर्बन्ध और सच्चे महाअनुभवी पुरुष की भक्ति करनी चाहिये। उसका सत्संग करना, उसकी रेडियेशन लेना और उसके वचनों को ध्यानपूर्वक गुनना और क्रियात्मक रूप में लाना ही गुरु भक्ति है–

ईश्वर की भक्ति, देवी देवताओं की भक्ति, ब्रह्म का चिन्तन आदि से निर्बन्धता नहीं आयेगी। अर्थात् मानसिक और आत्मिक सम्बन्ध नहीं टूटेगा। इनकी भक्ति से आनन्द, प्रसन्नता, मनोकामनाओं का पूर्ण होना अनिवार्य है। किन्तु इस चक्र से मानवीय सूरत न निकलेगी। यह मेरा अनुभव है।

मुझे कोई दावा नहीं है। दाता दयाल जी ने फ़कीरी का संस्कार दिया। साधु और सन्त की महिमा भव जाल से निकलने के लिये है, विभिन्न प्रकार के सन्देह, संशय, शंका, भ्रम, विचार भाव जिनमें मानवीय सुरत फँसी हुई है और दुख-सुख, भोगती रहती है। इससे निकालने का काम सतगुरु संत आदि का है। मुझे ज्ञात नहीं मुझे क्या समझा और क्यों मानवता मन्दिर में काम किया, सेवा की। सेवा के बदले में जो मैं कर सकता था, वह सच्चा ज्ञान, सच्ची बात तुमको बता दी। मुझे विश्वास है कि यह सत्संग के प्रभाव और समझ तेरे जीवन में प्रत्येक रूप से सहायक रहेंगे।

स्वभाव सत्य प्रिय है। हेरफेर करके बात करने की टेव नहीं है। शुभ भावना और मति देता हूँ जिससे कि तू इस भवसागर में प्रसन्नता पूर्वक तरता रहे और अन्त में पार हो जावे।

मौज़

॥ लेखक : परम दयाल जी महाराज ॥

आज प्रातः मानवता मन्दिर में एक प्रेमी ने एक शब्द पढ़ा–

गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा, सतगुरु दीनी दान॥

गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माँहि।
कहै कबीर ता दास को, तीन लोक भय नाँहि॥

अपना जीवन सन्मुख आता है, चूँकि मैंने प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा इसलिये मौज़ या मेरा कर्म मुझको इस ओर घसीटे लिये जाता है। सोचता हूँ कि ऐ फ़कीर! तुमको क्या मिला? अपने निज अनुभव के आधार पर लिखता हूँ कि शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बोध-भान क्या हैं और कैसे काम करते हैं? इनके क्या प्रभाव है? इनका ज्ञान हो गया। इस ज्ञान से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अवस्था पर नियंत्रण पाया। इसके अतिरिक्त मुझे यह विश्वास हो गया है कि कोई भी जब इन तीन अवस्थाओं में रहता हुआ कभी स्थाई रूप से शान्त या सुखी नहीं रह सकता। अस्थाई प्रसन्नता, शारीरिक, मानसिक व आत्मिक मिलती रहती है और समय समय के पश्चात् समाप्त होती रहती है तो मुझे यह मिला कि जब कभी कोई शारीरिक या मानसिक दुख आता है तो सुमिरन, ध्यान या भजन से दूर करने का प्रयत्न करता हूँ और जब यह नहीं होता है तो उस ज्ञान से, उस समझ से जो दाता की दया से प्राप्त हुई, मैं अपने

आपको उस आधार, सच्चे सत्गुरु के समर्पण कर देने से शान्ति प्राप्त करता हूँ और इस अन्तिम अवस्था में रहना ही नाम की प्राप्ति है।

जिस नाम की महिमा संत जन गाते हैं अपने निज अनुभव के आधार पर विवश हो गया हूँ कि वह नाम तीन प्रकार के बोध-भानों से ऊँचा है।

नाम रहे चौथे पद मांही। यह ढूढें त्रिलोकी माहीं॥

स्थाई रूप से शरीर त्यागने के पश्चात् क्या हो, ज्ञात नहीं। अनुमान एक और वस्तु है और प्रत्यक्ष प्रमाण दूसरी। सम्भव है मेरे इस लेख से अनेक व्यक्तियों के मन से सुमिरन, ध्यान, भजन का महत्व जाता रहे। इसलिये जिस से कि त्रुटि पूर्ण समझ न हो मैं कहना चाहता हूँ कि गुरु भक्ति सुमिरन का सम्बन्ध, शारीरिक बोध-भान पर अधिकार पाना है। इसकी प्रेम, श्रद्धा और विश्वास प्रारम्भिक सीढ़ियाँ हैं। एक प्रेम ही है जो उस मानव, जिसका सम्बन्ध अधिकतर शारीरिक बोध-भान के साथ रहता है। उसको इन्हें अधिकार में रखने के लिये यह अनिवार्य है कि वह किसी व्यक्ति से प्रेम करे। एक उदाहरण देता हूँ। मेरी एक पुत्री को चेचक निकल आयी। मेरी स्त्री निरन्तर 25 दिन जब तक कि पुत्री मर नहीं गयी उसकी चारपाई पर रात दिन बैठी रहती थी। मैं डरता था कि वह कहीं बीमार न हो जाये किन्तु उसको कुछ नहीं हुआ। इसी प्रकार जब तक शारीरिक बोध-भान रखने वाला किसी शरीर को इष्ट नहीं बनायेगा। वह अपने शारीरिक बोध-भान पर अधिकार नहीं पा सकता। इसीलिये महापुरुषों ने सगुण स्वरूप की उपासना प्रथम सीढ़ी या सोपान अनिवार्य बताई गयी है। स्वामी राम कृष्ण ने काली माई कलकत्ते वाली की मूर्ति से आरम्भ में प्रेम

किया। धन्ना, नामदेव आदि भक्तों ने अपनी-अपनी मूर्त्तियों से प्रेम किया। इसके अतिरिक्त कोई सच्चा मातृभक्त, पितृभक्त या लक्षमण जैसा भ्रातृभक्त हुआ।

जब शारीरिक बोध-भानों पर अधिकार हो जाता है तो फिर मानसिक बोध-भानों की बारी आती है। उसके लिये सुमिरन और ध्यान है। चाहे वह किसी भी वर्णात्मिक नाम या मूर्ति का हो। इस साधन से मानव अपने मन के विचारों पर नियन्त्रण पा सकता है। संतों के मार्ग में इन दोनों कामों को गुरुभक्ति या गुरु प्रेम के क्रम में एक साथ कराया जाता है। जब मन पर नियन्त्रण हो जाता है और यह सूक्ष्म हो जाता है तब प्रकाश या शब्द की बारी आती है। इसके साधन करने से शारीरिक और मानसिक बोध-भान तंग नहीं करते और आत्मिक आनन्द रहता है। सन्तों के मार्ग में चूँकि मानव जीवन में तीनों प्रकार के बोध-भानों की आवश्यकता पड़ती रहती है और आयु लम्बी नहीं होती। संक्षेप में तीनों साधनों को एक साथ कराया जाता है। अर्थात् साधन के समय सुमिरन, ध्यान और भजन एक साथ चलते हैं। सम्भव है प्रत्येक व्यक्ति इस बात को न समझ सके। इसलिये मैं उदाहरण देता हूँ।

सत्संग में गये, अपने गुरुदेव के दर्शन करते हुये, उनके रूप को देखते हुये, उनकी वाणी को सुनने से जो दशा उत्पन्न होती है। यही दशा अंतर में सुमिरन, ध्यान और भजन के करने से उत्पन्न होती है। जिन लोगों ने मेरा सत्संग ध्यान पूर्वक सुना है वह प्रतीत करते होंगे कि उस समय उनको न तो शारीरिक बोध रहता है, न उनका अपना मन कोई संकल्प विकल्प उठाता है और उनकी सुरत एक प्रकार का विशेष आनन्द या शान्ति प्राप्त करती है। वचनों की धार के साथ ऊपर चढ़ती है।

इस बाह्य साधन से मानव जब अंतरमुखी होता है तो वही दशा उत्पन्न होती है। किन्तु जब तक अंतिम सोपान न आयेगी इन समस्त प्रकार की नियंत्रण की दशाओं में परिवर्तन आता रहेगा। आज प्रातः एक शब्द पोथी सार वचन से निकला–

यह तो घर है काल का, घर अपना मत जान।
निश्चय करके मानियो, जो अब कहूँ बखान॥

सुरत भी सौख्य शान्ति प्राप्त नहीं कर सकती। मृत्यु के पश्चात क्या होता है, क्या होगा? इसके सम्बन्ध में कोई सम्मति देना मेरे जैसे सत्य प्रिय पुरुष के लिये कठिन है। अनुमान से संत कबीर और स्वामी जी की वाणी के साथ सहमत हूँ।

जहाँ पुरुष तहाँ कछु नांही, कहे कबीर हम जाना।
जो कोई हमरी सेना समझे, पवे पद निर्वाना॥

स्वामी जी की वाणी है–

नहिं ख़ालिक मख़लूक न ख़िलकत।
कारज कारन नहिं वहाँ दिक्कत॥

इस निज अनुभव के आधार पर पुकार करना चाहता हूँ। परमार्थ की धुन यदि किसी को कोई पूर्ण पुरुष मिल जाये तो तनिक समय में ही समाप्त हो सकती है। तीनों प्रकार के बोध-भानों को नियन्त्रण में रखने के लिए केवल किसी पूर्ण पुरुष का सत्संग जो विदेह गति में रहता है और सुमिरन, ध्यान और भजन सोच समझ के साथ किया जाये। दाता दयाल जी वर्णन किया करते थे कि वह 6 महीने का कोर्स (अवधि) है स्वामी जी ने लिखा है, **गुरु मिलै फिर कहा कमाना।** तत्पश्चात् अपने सांसारिक जीवन को नियन्त्रण में रखते हुये बिताना है। इसलिये मैंने अपने जीवन की खोज के पश्चात् पुकार की है कि **मनुष्य बनो।**

साथ ही गुरु को अपने सिर पर रखो। इसका अर्थ जो मैंने समझा है वह यह है कि जब तक शारीरिक बोध-भानों पर नियन्त्रण नहीं, बाह्यपूर्ण पुरुष का सत्संग रहे। जब शारीरिक बोध-भानों पर अधिकार पा लिया जाये, सुमिरन और ध्यान गुरु स्वरूप का रहे। जब मन पर अधिकार आ जाये तो प्रकाश और शब्द स्वरूप गुरु साथी रहे। जब यह ज्ञान हो जाये फिर यह जो अनुभव मैंने वर्णन किया है उसका विश्वास रखते हुये जीवन की यात्रा को मुक्ति या विदेह गति में बिताओ।

इस शब्द में चौथे लोक पहुँचने के लिये विधि बताई है। यह वर्णन करते हैं कि यह जो लोक या अन्तर की जो सोपानें हैं इनकी शोभा न्यारी है युक्ति बताते हुये अन्त में लिखते हैं–

पौ पर बाजी अटकी आय। गुरु बिन पौ का दाव न पाय।
सन्त सतगुरु जो जन पाय। चौपड़ से बाहिर हो जाय॥

मैं सोचता हूँ कि वह पौ क्या है? मुझे नहीं पता स्वामी जी का क्या है, न ही मैं जानता हूँ कि कबीर साहब, दातादयाल या हुजूर साँवलेशाह इस पौ को क्या समझते हैं। मैंने जो समझा वह कहता हूँ और यह मेरा कहना मेरे जीवन के अनुभव के आधार पर है। समस्त जीवन बहुतेरा अभ्यास किया शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बोध-भानों में अत्यन्त खोला, इनको छोड़ा भी। अन्त में एक ऐसी अवस्था आ गई, जहाँ यह समस्त बोध-भान नहीं रहते। वहाँ से फिर उत्थान हो जाता है। यदि मैं यह मान लूँ कि जब मैं ऊँचे स्थानों में होता हूँ तो मैं किसी विशेष शक्ति का मालिक हो गया वह ग़लत है। सहस्रों व्यक्ति मेरा ध्यान करते हैं, मेरा रूप उनकी सहायता करता है। बातें करता है, चढ़ाई कराता है। चूँकि मैं इन समस्त बातों में अनभिज्ञ होता हूँ और मैं नहीं बल्कि समस्त महात्मा जन अनभिज्ञ होते हैं। चूँकि

कुछ महात्माओं ने जैसे हुजूर बाबा चरनसिंह, सन्त कृपालसिंह, नन्दू भाई जी आदि आदि ने समर्थन या पुष्टी भी कर दी। इसलिये मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्रत्येक मानव का अपना-अपना संसार पृथक-पृथक है और हम सब प्राणी उस ज़ात, मालिक, परमतत्व, अकाल पुरुष के अंश हैं। अब मुझे ज्ञान हो गया कि मैं एक चेतन का बुलबुला हूँ। मैं ही नहीं बल्कि प्रत्येक प्राणी वहाँ से निकलता है और उसी में समा जाता है। इस ज्ञान से वह जो आवागमन का भ्रम, मालिक से मिलने की खोज थी, समाप्त हो गई। और इस अनुभव और ज्ञान के होने का नाम ही पौ का पड़ना है।

Letter of H.H.P.D.F.S. from Simla dated 1/8/64.

Due to ill health I have come to Simla, Nothing to worry, Itching has continued for the last 3½ months. Urine trouble is also there. General health is good.

I very earnestly and sincerely wish you a healthy life, happiness, wealth, wisdom and peace. You have rendered me a great help to discharge the debt of Data Dayal imposed on me.He knows when I shall leave this physical frame. His will is supreme. My address upto 10/8/64 is Railway Holiday House Simla. I hope no return by 14/8/64 to Hoshiarpur.

I had sent a draft of Rs. 500/- under registered cover which you must have received.

देख विचार हिये अपने नर, यह देह मरे तो कहा विगरयो है।
यह माटी का खेल खिलोना बन्यो, एक भाजन नाम अनंत धरयो है।
नेक न धीर धरे अपने मन, भ्रम मूल्यो चहुँ और फिरयो है।
द्रग लायके अंजन देखले 'यारी', यह कंचन ऐंन को ऐनं खरयो है।

मौज़

॥ लेखक : परम दयाल जी महाराज॥

अज़ल ने हर शख्सको बनाया, किसी काम के लिये।
मुझको बनाया खोज और अंजाम बताने के लिये॥

कल मानवता मन्दिर में एक सज्जन ने एक शब्द पढ़ा–

चार खान में भटकता, कभी न लगता पार।
सतगुरु के उपकार ने, कर दिया मुझको पार॥ (कबीर)

नेत्र बन्द हुये! सोचा! ऐ फकीर! क्या तू चार खान से पार हो गया। यदि हो गया है तो तू अधिकार रखता है कि किसी और को भी पार करने के लिए उपदेश करे। वरन् तेरा यह सत्संग कराना, लेख लिखना और काम करना पाखंड जाल है। मेरी दृष्टि दाता दयाल जी के स्टेचू (मूर्ति) पर गई और नतमस्तक हो गया। क्योंकि मेरा जितना अनुभव है उसमें दाता दयाल जी का संस्कार काम करता है। चूँकि मैंने प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा, इसलिये लिखता हूँ–

चार खान, चार प्रकार की योनियाँ, अंडज, जेरज, उद्भिज आदि हैं। मानवीय बुद्धि ने जीव-जंतुओं को चार प्रकार की योनियों में बाँट दिया है। इस वर्तमान 19वीं 20वीं शताब्दी में मानवीय तीव्र बुद्धि इस प्रकार की बातों को मानने के लिए तैयार नहीं है। इसलिये कहना पड़ता है कि वर्तमान विज्ञान का सहारा लिया जाये। क्योंकि पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से है और जब सूर्य की किरणें इस पृथ्वी पर नहीं आती तो यह चार खान के जीव जन्तु, अन्न, आदि उत्पन्न ही नहीं हो सकते।

अधिक व्याख्या करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। सब ही समझते हैं कि पृथ्वी मंडल पर यदि सूर्य न हो तो ये जीव जन्तु उत्पन्न ही नहीं हो सकते। आवागमन का सिद्धान्त ठीक है। ईसाई तथा मुसलमानों के अतिरिक्त सभी मानते हैं। यदि ये नहीं भी मानते तो जिस प्रकार दूसरे मानते हैं। तो मृत्यु के पश्चात् नर्क तथा स्वर्ग को तो मानते ही हैं। यदि कोई न भी माने तो वर्तमान समाचार पत्रों के समाचार कि अमुक्त बच्चे ने अपने पूर्व जन्म की घटनायें या वृतान्त बतलाई और वे सत्य निकली, फिर यह बात तो आवागमन को सिद्ध करती है। डर्विन का सिद्धान्त भी यही कहता है कि जीवन जल से आरम्भ होकर मानव योनि तक आया। मेरा निज अनुभव भी यही सिद्ध करता है कि अन्त समय में जिस प्रकार के मनुष्य के भाव विचार होते हैं, वैसा ही दूसरा जीवन, जन्म उसको मिलता है। इसका प्रमाण मेरे पास अपने पुत्र-पुत्री और माता के अंत समय के विचारों के अनुसार है कि जो कुछ मैंने अनुभव किया था वह ठीक निकला।

तो इस चार खाने जिसमें मानवीय जीवन सबसे श्रेष्ठ है जिसमें दु:ख सुख होता रहता है। यदि कोई बचना चाहता है तो मानव के लिये यह अनिवार्य है कि वह अपना शरीर त्यागने से पूर्व अपनी वासना या बोध-भानों को किसी स्थूल-प्रकृति के साथ अपना सम्बन्ध न रखे। तब तो यह आशा की जा सकती है कि वह इस पृथ्वी की जो चार खान की सृष्टि है इससे बच सकता है। किन्तु यदि वह इस चार खान से बच भी गया तो उसका आवागमन समाप्त नहीं हो सकता। वह अपने सूक्ष्म प्रकृति अर्थात् मानसिक या आत्मिक बोध-भान में रहेगा। अत: किसी दशा में भी उसको स्थाई जीवन प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये मेरी समझ में चार खान केवल इस पृथ्वी की रचना के जीव-जंतुओं का ही जगत नहीं है बल्कि इससे परे और भी

जगत् है। पर मेरे विचार में जहाँ मानवीय बुद्धि ने धार्मिक दृष्टि कोण से इस संसार के जीव जन्तुओं को चार खान में विभाजित किया है वहाँ सन्तों ने मानवीय अस्तित्व को पूर्ण रूपेण चार भागों या खानों में विभाजित किया है। मेरे निज अनुभव ने इसे सत्य माना है।

प्रथम- स्थूल प्रकृति की रचना: जिसमें सूर्य उसके मंडल और भू-लोक का जीवन भी सम्मिलत है।

द्वितीय: सूक्ष्म प्रकृति की रचना: जिसमें डांकनी, सांकनी प्रेत, धर्म दूत, गन्धर्व लोक के गन्धर्व और विष्णु, विष्णु लोक आदि आदि विद्यमान है।

तृतीय :- कारण प्रकृति की रचना: प्रकाश, शब्द का मंडल, उसकी समस्त किरणें हंस आदि कहलाती हैं, सम्मिलत हैं।

चतुर्थ- केवल चेतन देश जिसके समझने के लिए निज साधन की आवश्यकता है। इसके बिना इस चेतनता का बोध-भान, जानना, अनुभव करना, असम्भव है।

यह लिख रहा था तब मेरे अंतर प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या फ़कीर तुमने तीनों प्रकार की प्रकृतियों की रचना देखी है या योंही केवल बौद्धिक दृष्टिकोण से लिख रहा है? नेत्र बन्द हुए, अधिक समय के पश्चात् चेतनता आई।

पढ़ने वालो! तुम स्वयं आँख, कान और जुबान बन्द करो। अपने शरीर के समस्त सम्बन्धों, बोध-भान, जिनका सम्बन्ध स्थूल प्रकृति से है भूल जाओ। यदि नहीं भूल सकते तो किसी वर्णा आत्मिक शब्द या नाम का अजपा जाप करो। फिर गुरु स्वरूप का ध्यान करो। इससे तुम्हारे शारीरिक बोध-भान भूल जायेंगे। कर के देखो। फिर केवल तुम्हारा मन रहेगा। उस मन में विशेष प्रकार का मानसिक बोध-भान

उत्पन्न होगा। उसमें भय, चिन्ता, अचिन्ता, प्रसन्नता,अप्रसन्नता आदि विद्यमान रहेंगे। यह तुम्हारी दशा उन प्रभावों पर आधारित होगी जिनका बोध-भान तुमको बाह्य प्रभावों से मिला हुआ है। यह विभिन्न प्रकार के बोध-भान जो तुम्हारे मन में उत्पन्न होते हैं यह तुम्हारी सूक्ष्म प्रकृति के वैसी ही चार खान अर्थात् दशाएँ हैं। जैसे कि मानव का शारीरिक जीवन विभिन्न प्रकार की योनियों से बदलता हुआ मानवीय चोले में आया है। इसी प्रकार सूक्ष्म प्रकृति के लोक में अनेक प्रकार की योनियां होती रहती हैं, जिनका संक्षेप रूप में नाम ऊपर अंकित किया गया है।

दाता दयाल जी की दया से मैंने कुछ दिनों इस सूक्ष्म प्रकृति के केन्द्र का भ्रमण किया है। उनकी दया से आचार्य पद पर आने से सत्संगियों के अनुभव से मुझे विश्वास हो गया कि यह मेरा मानसिक जगत् जितना था यह सूक्ष्म प्रकृति का खेल था। चूँकि उनकी दया से मुझे नाम मिला हुआ था अर्थात् प्रकाश और शब्द के साधन का विचार मिला हुआ था मैं उस की ओर गया। तुम भी जा देखो। तुमको ज्ञात हो जायेगा कि इस सूक्ष्म प्रकृति के परे प्रकाश और शब्द का संसार है। जब इस प्रकाश और शब्द में ठहरोगे तो इसके अन्तर भी विभिन्न प्रकार के आनन्द और प्रसन्नता के बोध-भान उत्पन्न होंगे। चूँकि यहाँ आनन्द की विभिन्न दशाएँ बीज रूप में होती हैं, इसलिये उनको पृथक-पृथक करके अनुभव करना कठिन काम है। यह मेरा निज अनुभव है।

यह तीन अवस्थायें तीन प्रकार की खानें हैं। शास्त्र इसको सत्, चित्, आनन्द कहते हैं। अर्थात् शरीर, मन और आत्मा। चौथी अवस्था में न प्रकाश है न शब्द है। केवल अस्तित्व का 'हैपना' है। वह वर्णन नहीं किया जा सकता।

दाता दयाल जी के शुद्ध स्वरूप का उपकार है जिन्होंने मुझको इन चारों अवस्थाओं का अनुभव करा दिया।

कोई समय था जब शारीरिक जीवन के स्थित रखने और प्रसन्नमय बनाने के लिए चिन्ता किया करता था। फिर मन के या मानसिक जीवन को श्रेष्ठ और सुखदायक और प्रसन्नमय बनाने का प्रयत्न करता रहा कि प्रसन्नमय हो। तत्पश्चात् प्रकाश और शब्द रूप होने के लिए या उस मण्डल में जाने के लिये साधन, अभ्यास आदि पर बल देता था। किन्तु आज वो समय आ गया कि इन तीनों अवस्थाओं में से कोई भी मुझे खींच नहीं सकती। यह उपकार है दाता दयाल जी का कि मैं इन तीन खानों की आकर्षण शक्ति से निकल गया।

न सेहत की तलब, न मन के सुख की चाह रही।
शब्द का आनन्द था, उससे तबियत बेपरवाह हुई॥

अंतिम सोपान का दृश्य प्रत्येक समय समक्ष रहता है, कब होगा समाप्त, यह मालिक आप ही जाने। यह उपकार है दाता दयाल जी का। अब यदि मैं इस सत्-चित् आनन्द के खेल में ही फँसा रहूँ तो अपराध मेरा है या किसी और का। दाता दयाल जी ने तो मुझे अनुभव करा दिया। यह उनका उपकार था।

अब दया गुरु की हुई, निश्चय कि शक्ति मिल गई।
भ्रम की गठरी खुली, और सुरत निर्मल हो गई॥

यह मिला मुझको गुरु भक्ति से मेरे दोस्तो।
ख्वाहिश थी कह जाऊँगा, और वह पूरी हो गई॥

स्थायी रूप से शरीर त्यागने के पश्चात् क्या होगा, यह मुझे ज्ञात नहीं। यह समय बतायेगा।

चूँकि मुझे एक कार्य सौंपा गया था, इसलिये सत्संग करा देता हूँ। जो समझ में आया, बताता रहता हूँ। उस रहस्य को जिसको महापुरुषों ने छिपा रखा और जिनको बताया भी उनको कह दिया–

धर्म दास तोहि लाख दुहाई। सार भेद बाहर नहिं जाई ॥
वहाँ का भेद छिपाऊँगी। वहाँ का मर्म न गाऊँगी ॥
(स्वामी जी)

चूँकि उस भेद के छिपाने से जिज्ञासुओं को शान्ति नहीं मिली। वह भटकते फिरते हैं। कोई व्यास, कोई आगरा, कोई गंगा, कोई गोदावरी, कोई कहीं, कोई कहीं। इसलिये मैंने गुरु ऋण से उऋण होने के लिए बात स्पष्ट और स्वच्छ कर दी। किन्तु जो वस्तु परिश्रम और प्रयास से प्राप्त होती है, मानव उसका सम्मान नहीं करता है और जो बिना मूल्य के मिलती है उसका आदर नहीं करता। यही बात हमारे संसारिक जीवन में भी है जिस पुत्र को पिता की संपत्ति यों ही मिल जाती है वह उसका अपमान और निरादर करता है और जो अपनी कमाई हुई हो तो उसकी रक्षा करता है, आदर करता है।

मैं इस कर्म के करने से जो मेरी आत्मा पर एक बोझ था भार था, गुरु का उपकार था, उससे निवृत हो गया।

कलामे खुशदिल

1. **जीवन की नैया खिवैया, मेरे अब तो सुनले पुकार ॥ हाँ ॥ टेक**
   हज़ारों अरज़ियाँ दरख्वास्त पेश कर दी है।
   उन्हीं में पापों की मिल ले भी साथ धर दी हैं ॥
   हुजूर जल्द मुक़दमे का तसफ़िया कर दो।
   तभी है मुन्सफ़ी जब दास को रिहा कर दो ॥ हो सदा०
2. **जिसने कि एक बार लिया मुँह से तेरा नाम।**
   सौ बार तूने उसके सँवारे हज़ार काम ॥

   तन मन से धन से नाथ जो होवे तेरा गुलाम ॥
   मिलती है जीते जी उसे भक्ति व तेरा धाम ॥ है तू०
3. **'हज़ारी' का तूने वक्त लटाया था भीड़ का।**
   'दुर्गा' को तमाशा दिखाया अमीर का ॥
   'विश्वप्रेमी' से कराया काम यह सच्चे फ़क़ीर का।
   'कृषक' ने हमें सबक दिया तेरी नज़ीर का ॥ करता है०
4. **'खुशदिल' तू कहीं जाके न अपनी जुबां हिला।**
   और दर्द अपने दिल का किसी को न तू बता ॥
   मकदूर क्या किसी का वही दे वही दिला।
   लगजा उसी की राह में बातें न तू बना ॥ कर देगा०
5. **दिन रात सुबहो शाम जो चक्कर में रहते हैं।**
   हमको सुना सुना के, वह हर वक्त कहते हैं ॥
   यकसां कभी ज़माने की, हालात नहीं हुई।
   चंचल है दिल कभी, कभी आती है यकसुई ॥ उससे०
6. **जो काम में लगे हैं, बदलते हैं हाल को।**
   जो सूरत हैं बढ़ाते हैं, दर्दो मलाल को ॥
   'खुशादिल' तो अपने काम में अब मस्त रहते हैं।
   जो हैं निकम्मे आदमी वह सुस्त रहते हैं ॥ करता है०
7. **जो सबको छोड़कर तुझको ही, अपना सर झुकाता है।**
   तू उसके सारे बिगड़े काम, पल भर में बनाता है ॥
   जो माया काल के चक्कर में, तुझको भूल जाता है।
   नहीं तू उसकी किश्ती को, किनारे से लगाता है ॥ तेरी०

मौज़

॥ लेखक : परम दयाल फ़कीर जी महाराज॥

मा. मोहनलाल जी तुमने कल उस स्त्री की बात सुनी थी जो यह कहती थी कि उसने मुझे जाग्रत अवस्था में प्रकाशवान रूप में देखा था और मैं गाता था– **कर्म गति टारे नाहिं टरे**' उसके साथ घटना लगभग दो घन्टे तक होती रही।

इसके अतिरिक्त एक व्यक्ति ने पूज्य अमोलक राम जो हुजूर साँवले शाह व्यास वालों के अत्यन्त प्रेमी थे, जिन्होंने व्यास के सत्संग घर से छलाँग लगाकर अपनी जान दे दी थी या गिर गये थे यह मालिक ही जानता है कि क्या हुआ? जो कुछ भी हुआ हो उनकी मृत्यु हो गई। उनके सम्बन्ध में यह सुना गया है कि वह कहा करते थे कि अनामी धाम के प्रवेश करने में यह शरीर बाधक होता है और वह इसको छोड़ना चाहते थे। इसलिये लोग कहते हैं कि उन्होंने छलाँग लगा दी।

एक और घटना भी आपने संघनाई की सुनी कि एक नव युवक के अंतर चिन्तपूर्णी देवी प्रगट हुई और उसको कहा कि यहाँ कुआँ और मन्दिर बनवा दो। मेरी सत्ता चिन्तपुर्णी से यहाँ आ जायेगी। समाचार पत्रों में भी इसका उल्लेख था। पुत्र का पिता और चाचा भी मुझसे यहाँ मानवता मन्दिर में मिले थे। किन्तु उनका काम अधूरा रह गया। रुपये की पूरी सहायता न मिल सकी।

आपका मुझसे प्रेम है। यह आत्मिक लगन आपको अपने पिता जी से बिरसे (दान) में मिली है। सन्यासियों, सन्तों की पर्याप्त सेवा की हुई है, चूँकि मेरी भी आयु इसी धुन में बीती इस लिये अपना

अनुभव कहना चाहता हूँ जिससे कि आपको अनुभव और ज्ञान हो जाये, उस स्त्री ने जो जाग्रत अवस्थ में मेरा रूप देखा, वह मैं तो था नहीं, यह क्या रहस्य है? चूँकि इस स्त्री की माता अधिक समय से अत्यन्त बीमार है, उसकी बीमारी के कारण यह स्त्री अत्यन्त दुखी रहती है। स्त्री जाति या मानव का मन जब किसी उलझन की गुत्थी को सुलझाना चाहता है। चूँकि प्रत्येक मानव स्वयं पूर्ण है, उसके अपने ही मन की शक्ति उसके लिये शान्ति और उपाय बताती है। चूँकि यह स्त्री मुझसे प्रेम करती है, इसलिये उसके मन ने मेरे रूप का सहारा लेकर, उसको शान्ति देने का प्रयत्न किया कि तुम्हारे कष्ट का कारण कर्मगति है। मैं नहीं गया, न मुझे कोई पता है।

श्री अमोलक राम के सम्बन्ध में जो कुछ सुना, उनके यह विचार कि अनामी धाम के पहुँचने में उनका शरीर बाधक होता है और उन्होंने शरीर को त्यागने के लिए यदि छलांग लगा कर आत्महत्या की तो उसका कारण यह है कि उनको पूर्ण ज्ञान नहीं मिला। यह दशा जो उन पर आती रही है, मुझ पर भी आती रही है।

मानव की सुरत यह समझ कर कि उसका कोई अन्तिम स्थान है, वहाँ ठहरना चाहती है और उस अन्तिम स्थान का नाम अनामी धाम है। किन्तु मेरे अपने जीवन के अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि अनामी धाम दूसरे लोकों की भांति कोई लोक नहीं है। चूंकि मैं प्रतिदिन उस अवस्था में जाता रहता हूँ, मुझे यह अनुभव हुआ है कि सुरत, आत्मा, मन और जीव दशा यह अस्तित्व के क्षोम के क्रम में प्रकट होते हैं। जब तक यह ज्ञान नहीं प्राप्त होता– जैसा कि ऊपर कहा गया है कि सुरत, आत्मा, मन और जीव दशा बनती है और टूट जाती है, मानवीय सुरत की कुरेद समाप्त नहीं हो सकती। क्योंकि जीव दशा में देह का ''मैं पना'' मन में विचार का मैं पना,आत्मा में आत्मिक भाव का मैं पना और सुरत में सुरत होने का बोध–भान स्थित रहता है।

जब यह ज्ञान हो जाता है तो फिर न आत्मपद की इच्छा रहती है और न अनामी पद की। जो कुछ मैं आपको कह रहा हूँ, अब उसके प्रमाण में दाता दयाल जी की वाणी सुनाता हूँ–

न अपना नाम रखना तुम, न दुनिया में निशां रखना।
नहीं की जब गई आदत, जुबाँ पर तब न हां रखना॥
'मक़िर' होना अवस है, और 'मुनकिर' होना है गलती।
न सर में ऐसे सौदे का, कभी बारे गिराँ रखना॥
न साहिबे दिल ने बेदिल, बनने के तुम में हविस आये।
न दिल देना न दिल लेना, न वहमे दिलसिताँ रखना॥
अगर है तर्क कर दो तर्क, का भी तर्क वे शुम्भा।
मकां जब छूट गया, फिर क्यों ख्याले ला मकाँ रखना॥
खमोशी मानिये दारद, कि दर गुफ्तन नमी आयद।
न सच और झूठ कहने के लिए मुँह में जुबाँ रखना॥

मुझे जो कुछ मेरा अनुभव है, उसके सत्य होने में कोई सन्देह नहीं है। यदि अनामी धाम की भी इच्छा है तो इच्छा करने वाली वस्तु विद्यमान है, तो ''हूँ मैं'' कैसे गई?

आप प्रश्न करेंगे कि ऐसा किसी ने नहीं कहा?

कहा अवश्य, किन्तु संकेत में। निर्वाण है क्या? प्रत्येक प्रकार की वासना, इच्छा का चाहे सांसारिक, मानसिक या आत्मिक या मुक्ति की भी वासना जो है जब तक विद्यमान है, मानवीय जीवन में जो कुरेद है, वह समाप्त नहीं होती। जब यह ज्ञान हो गया तो मौनता आ जाती है। यह संसार, सृष्टि, रचना कब से है, कोई क्या कहे? अस्तित्व की क्षोभ प्रज्वलित है, उसमें ज्वार भाटा आता रहता है, जीव-जन्तु, लोक लोकान्तर, सुर-असुर, ऋषि-मुनि, पीर-पैगम्बर सब कुछ होता रहता है। मानव जब अपना अस्तित्व मिटा जाता है तो उसके लिये न यह संसार न लोक-लोकान्तर। इसी विचार से

राधास्वामी दयाल ने वेदान्त तक को काल मत कह दिया। स्वामी जी की बाण है–

ना जानूं सतलोक न अनामी। जो कुछ हैं सो राधास्वामी॥

यदि इन अमोलक राम को पूर्ण पुरुष मिला होता और उन्होंने उनसे इस रहस्य को समझ लिया होता, तो वह इस भावुकता में आकर कि यह अनामी धाम पहुँचने में मेरा शरीर बाधक है, ऊपर से छलाँग लगाकर आत्महत्या कभी न करते। किन्तु मौज का खेल है। जैसे-जैसे जीव जन्तु प्रकृति ने बनाये है, वैसा-वैसा वह मौज सब को गतिशील, करती रहती है। चूँकि मेरे अन्तर भी वही भाव रहा है इसलिये चूंकि मुझे इस ज्ञान से लाभ हुआ, मैंने आपको अपना अनुभव वर्णन किया कि परम सुख, परम शान्ति न तो अभ्यास में है और न साधन में, केवल अनुभव और ज्ञान में है। किन्तु यह अनुभव और ज्ञान बिना साधन के प्राप्त भी नहीं होता। इसलिये नाम और गुरु भक्ति दोनों वस्तुयें राधास्वामी मत में आवश्यक हैं। मैंने अपने टूटे-फूटे शब्दों से अपने आन्तरिक भाव को समझाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि मैं समझता हूँ कि मेरे शब्द अपूर्ण है।जब तक जीवन है, मानव अन्तिम अवस्था में जाने का प्रयत्न न करे। इसके लिए किसी विदेह पुरुष का सत्संग अत्यन्त अनिवार्य है। यह जितना खेल है, सब मन का है। चौदह लोक में मन रहता है।

अब वह नवयुवक जो संघनाई ग्राम का है, जिसके अंतर चिन्तपूर्णी देवी प्रकट हुई थी, उसके सम्बन्ध में सुनो, वह क्या थी? उस ग्राम में जहाँ इस नवयुवक का घर था, जल की बड़ी कमी थी। एक 2 मील से जाकर पानी लाना पड़ता था। इस नवयुवक को उस आपत्ति का बोध-भान था। उससे बचने का उपाय सोचा। चूंकि वह देवी का उपासक था, इसलिये देवी के रूप में सम्मति दी गयी कि यहाँ कुआँ खोदा जाये।

मा. मोहनलाल! मेरे मस्तिष्क पर भी विभाजन और देश के सम्प्रदायिक और धार्मिक मत भेदों के संस्कार थे। उनसे बचाव का विचार मन में विद्यमान था। मेरी ही आत्मा ने उस का उपाय "मनुष्य बनो" के रूप में व्यक्त किया। मानव का व्यक्तित्व वयं इस पूर्ण प्रकृति का नमूना है। इसमें सब शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। मुझे किसी बात का कोई दावा नहीं किन्तु मेरा अनुभव है और उस पर मुझे विश्वास है। चूँकि मुझे अपना निजस्वार्थ या किसी धर्म, पन्थ का पक्ष नहीं है। मौज़ ने मेरी सूरत, आत्मा, मन और शारीरिक बोध-भान बनाये और उसने मुझ से विवशतः काम लिया। आज नाराणदास ने मुझे कहा कि पंडित जी आपके स्पष्ट वर्णन से आपका क्षेत्र नहीं बढ़ सकता। मैं हँसा! मित्र! यदि क्षेत्र बढ़ाने की इच्छा करूँगा तो मेरी "हूँ मैं" कैसे समाप्त होगी? मैं उस अन्तिम अवस्था में हूँ जिसके पश्चात् किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती।

मौज़ को स्वीकार है तो मानवता का युग आ जायेगा, नहीं स्वीकार है न सही। आप लोगों ने मुझसे प्रेम किया है, संसारिक दृष्टिकोण से धन्यवाद देता हूँ। किसी का जी चाहे मिले, जिसका न चाहे न मिले।

नोट - मा. मोहनलाल ने इस लेख को पढ़कर प्रश्न किया कि अमोलक राम को हुजूर साँवलेशाह ने नाम दान दिया हुआ था। वह पूर्ण थे। अमोलक राम की समझ मे यह रहस्य क्यों नहीं आया?

उत्तर– हुजूर बाबा साँवलेशाह वर्णन किया करते थे और स्वामी जी की भी वाणी है कि जब तक सुरत दसवें द्वार से आगे नहीं जाती, सतगुरु नहीं मिलता।

इसके अतिरिक्त मेरे पास अनेक पुराने-पुराने सत्संगी व्यास के आते रहते हैं जो यह कहते हैं कि बाबा जी ने अनेक व्यक्तियों को अभ्यास करने से रोका। क्यों? इसी कारण कि अभ्यास व्येय या लक्ष्य नहीं है। यह केवल साधन है। चूंकि अमोलक राम साधन करते रहे

और बाबा साँवलेशाह का चोला छूटे अधिक समय हो गया किसी ने उनको यह रहस्य या भेद नहीं बताया, जो उपरोक्त वर्णन किया गया है कि वास्तविकता तो एक अनुभव है, ज्ञान है। इसलिये मैंने कहा है कि उनको पूरा गुरु नहीं मिला। किसी को यदि फ़कीर चन्द मिल भी गया अथवा कोई महापुरुष मिल भी गया तो इसका अभिप्राय वह तो नहीं कि उसको ज्ञान मिल गया। ज्ञान को अवस्था तो पर्याप्त अभ्यास के पश्चात् किसी सतपुरुष के संकेत को समझने से मिलती है। इस संकेत को जो मैंने किया है साधारण सत्संगों में कहने की प्रथा नहीं हैं क्योंकि मानव की साधन अवस्था पूर्ण नहीं होती। मैंने कल आपको कहा था कि जो अभ्यासी अपने अन्तर में अपने इष्टदेव की मूर्ति बनाकर उन से बातें करते रहते हैं वह लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकते। यह सुमिरन और ध्यान केवल मन के एकाग्र करने और संकल्प शक्ति के बढ़ाने और मानसिक आनन्द लेने के लिए है। वास्तविक वस्तु जिससे स्थायी शान्ति मिलती है वह केवल किसी पूरण पुरुष का सत्संग है। यही सार तत्त्व है। यही सन्त मत की शिक्षा की कुँजी है। शब्द गुरु को कीजिये–

सतगुरु खोजो री जग में, दुर्लभ रतन यही।

मा. मोहनलाल! जीवन में एक भ्रम था कि सन्तों ने समस्त ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म आदि का खंडन करके केवल जीवित पूर्ण पुरुष की संगत पर क्यों बल दिया है अब समझ आ गई और शान्त हूँ। इसी विचार से मैंने गुरु ऋण को उतारने के लिए अपने आपको समय के संत सतगुरु के रूप में उपस्थित किया है। सम्भव है लोग मुझे अहंकारी समझें, समझ ले। मौज़।

मौज़

॥ लेखक : परम दयाल फ़कीर जी महाराज॥

प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति ने किसी विशेष व्येय के लिए बनाया है। मैं अपने घर जहाँ से मानव आता है, उसकी खोज में चला था। चूंकि उस मालिक या अपने घर के सम्बन्ध में नाना प्रकार के विचार सुने हुये थे। खोज थी। दातादयाल के शुद्ध स्वरूप ने उस निज घर पुहँचने के लिये गुरु पदवी दी थी और वर्णन किया था। मेरी आज्ञा मानना। तुमको तुम्हारे घर का या मालिक का पता मिल जायेगा। आज दो तीन दिन से जैसे पहले साधारणतया लोग कहा करते हैं, एक-दो मित्रों ने कहा कि उन्होंने जाग्रत अवस्था स्वप्न अवस्था और साधन मे मुझे देखा।

आज अकेला था, स्वभावत: सोचने के लिए विवश हुआ कि मैं तो था नहीं। इसी प्रकार, विवश होकर अपने-आपको वहाँ ले जाने का प्रयास किया, जहाँ मन, स्वरूप, रंग, रेखा, दृश्य, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि नहीं होते क्योंकि यह बन-बन कर अपना खेल दिखाती है, कहाँ गया? प्रकाश और शब्द के मंडल में।

हम वासी उस देश के, जहाँ बारह मास विलास।
प्रेम झरे बिगसे कमल, तेज पुन्ज प्रकाश॥

फिर चेतनता आई और वह गुत्थी पूर्ण रूपेण सुलझी जिसके सुलझने में जीवन खो दिया।

राधास्वामी दयाल और कबीर की वाणी ने समस्त मत मतान्तर, धर्म और सम्प्रदायों के विचारों को काल मत या माया मत कहा है वह सत्य सिद्ध हुआ। मैं अब नीचे आना नहीं चाहता। हो सकता है ऐसा समय आ जाये जो बाह्य रूप में सांसारिक दृष्टि से अचेतनता कहलाती है। इसलिये मैं कहना चाहता हूँ कि ऐसी अवस्था में मुझे व्यर्थ चेतनता में लाने की औषधि या टीका आदि का प्रयोग न किया जाये।

इस मन के आगे क्या है? यह जिह्वा उच्चारण नहीं कर सकती। शब्द अपूर्ण हैं। मन वाणी का गम नहीं। चूँकि मुझे मेरे प्रारब्ध कर्मानुसार या दाता दयाल जी की आज्ञा, अथवा मौज से जगत कल्याण का काम सौंपा गया था और निबल, अबल, अज्ञानियों को सहारा देना था, इसलिये कहता हूँ कि यदि यह रहस्य देश के कर्णधार और बुद्धिमानों की समझ में आ जाये कि समस्त सृष्टि में मन का खेल है और प्रत्येक व्यक्ति का उपास्य देव जो कि वह बनाता है, उसका अपना ही मन है कोई अन्य नहीं है तो हमारे भारत के जितने भी धार्मिक और पान्थिक मतभेद हैं जो इस अज्ञान के कारण है तो मानव जाति की परस्पर एकता हो सकती है। रह गया प्रश्न मन से निकलने का, वह प्रत्येक व्यक्ति का काम नहीं।

जा पर कृपा करें गुसाई। गगनी मारग पावें राहीं॥

मस्तिष्क के भीतर दो प्रकार के भाग हैं। एक भूरा और दूसरा श्वेत सफेद। जब तक मानव की सुरत शरीर मन के भूरे रंग की। (Cells) कोठरी में रहती है कोई व्यक्ति भी इस मन-माया के चक्र से नहीं निकल सकता जब तक कि उसकी सुरत सफेद रंग के भाग में न जाये। मेरी समझ में सफेद रंग के भागों के केन्द्रों का नाम सत, अलख,

अगम, अनामी है और भूरे रंग के केन्द्रों का नाम सहस्रदल कमल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न और भँवर गुफ़ा आदि है।

मैं प्रतीत करता हूँ कि मैं इस योग्य नहीं रहा कि जन साधारणक साथ अब मेल मिलाप रख सकूँ। इसलिये व्यर्थ कोई मुझसे पत्र व्यवहार न करे। यदि चेतनता रही तो सत्संग यदि दे सका तो देता रहूँगा।

नोट – मैं आशा रखता हूँ कि वर्तमान और भावी महात्मा जन संसार का सही पथ प्रदर्शन करेंगे और अपने निज स्वार्थ मान, प्रतिष्ठा, धन सम्पत्ति आदि के लिये बात को हेर फेर करके निबल, अबल और अज्ञानी जीवों को त्रुटि पूर्ण धर्म पंथ और गद्दियों के साथ न बाँधेंगे।

सम्भव है कि संतमत वाले मेरे इस प्रकार के लेख को पढ़ कर मुझे गुरुमत का विरोधी समझे। मैंने इस पर अधिकतर विचार किया है और मैं यह समझता हूँ कि सन्तों के मार्ग में पूर्ण पुरुष, सतगुरु की महिमा वर्णन की गई है और वह यही है कि मानव की सुरत को काल, माया से निकाल कर सतपद या धुरधाम पहुँचा दिया जाये। और धुरधाम उस समय तक नहीं पहुँच सकती जब तक कि मानव इस मन के चक्र से नहीं निकलता।

और इस मन के चक्र से निकलने के लिये सच्चे अनुभव और ज्ञान की आवश्यकता है। दाता दयाल जी की कृतज्ञता है कि उन्होंने जिस रहस्य को मैं समझ नहीं सकता था, आचार्य बनाकर समझा दिया।

परम दयाल जी का शिमला में साधन। (9-8-64)

''**खिंच रूहँ मेरे प्यारे राधास्वामी।**'' साधन के पश्चात् उठा। कहाँ था? सुरत खिंची जा रही थी। किस ओर को? यह वर्णन करना मेरे लिये कठिन है। राधास्वामी दयाल की वाणी में एक शब्द में कड़ी आती है– ''**खिंच रहूँ मेरे प्यारे राधास्वामी**''।

अपनी दशा मा. मोहनलाल से वर्णन की। उन्होंने प्रश्न किया कि मैं इस वाणी की कड़ी को समझ नहीं सकता। मैंने कहा कि तुम युवक रहे हो। जब पुरुष स्त्री के पास बैठता है तो उसका शरीर स्वाभाविक उसके शरीर की ओर खिंचता है। छोटा बालक हो प्राणी उसको प्यार करने के लिए उसके निकट आता है। यह शारीरिक आकर्षण है। मानव के मन के भीतर कोई प्रिय या सुखमय विचार या सुन्दर मूर्ति उत्पन्न होती है तो मन उसकी ओर खिंचता है। यह मानसिक आकर्षण है। जो ब्रह्म नेष्टी अपने अन्तर प्रकाश के दृश्य देखते हैं या सूर्य, चन्द्र के रूप का प्रकाश देखते हैं, यह आत्मिक आकर्षण है।

मेरा जीवन उस मालिक के प्रेम तथा भक्ति की ओर बाल्य अवस्था से ही लगा था। शारीरिक आकर्षण तो यह था। कहाँ बसरा बगदाद और कहाँ भारत वर्ष में लाहौर या राधास्वामी धाम वहाँ खिंचा हुआ आता है। फिर अपने मन के भीतर दातादयाल जी का रूप बनाता और खिंचता रहता फिर अन्तर का प्रकाश या दृश्यों को देखता था। यह आत्मिक खिंचाव था।

यह तीनों खिंचाव अनुभव और ज्ञान से बंद हुए। दातादयाल जी का खेला छूट गया, अनुभव ने निश्चय कर दिया कि कोई भी स्थूल वस्तु स्थिर नहीं रहती। वह शारीरिक खिंचाव बंद हुआ। तत्पश्चात् सत्संगियों के अनुभव ने कि वह मुझको अपने अंतर देखते हैं मुझे ज्ञान दे दिया कि वह सब प्रत्येक प्राणी की अपनी ही कल्पना से होते हैं और मानव अपने अज्ञान से किसी शारीरिक अथवा मन की उत्पन्न की हुई आकृतियों तथा रूपों को ओर खिंचता रहता है। इस अनुभव के पश्चात् शब्द और प्रकाश की ओर खिंचाव रहा। उसकी ओर खिंचता रहा। बहुत कम बार खिंचाव समाप्त हुआ, फिर एक ऐसी अवस्था में चला जाता है जहाँ न मैं, न वह खिंचाव, न कोई इष्ट। मैं

उस अवस्था को अनामी पद कहता हूँ। अभी व्यक्तितव स्थित है। अर्थात् मेरा अस्तित्व विद्यमान है। इसलिये सुरत का खिंचाव प्रज्वलित रहता है। मौजाधीन शरीर और मन में रहता हुआ काम भी करता रहता हूँ, सोच विचार भी रहता है। किन्तु यह काम और सोच विचार ऐसे होता है जैसे कि नहीं है। यह आक्रामिक अवस्था कहलाती है। अस्तित्व के समाप्त होने के पश्चात् क्या होगा, ज्ञात नहीं, अन्तत: कबीर साहब की वाणी याद आती है–

जहाँ पुरुष तहाँ कछु नाहीं, कहै कबीर हम जाना।
जो कोई हमरी सैना, समझे, पावे पद निर्वाना॥

इस निज अनुभव के आधार पर यह अनुभव होता है कि जीवन एक चमत्कार है, बुलबुला है। मौजाधीन सब खेल हो रहा है। इसको समझकर के मनानन्द, योगानन्द, विवेकानन्द, आत्मानन्द, सुखानन्द लेता रहता हूँ। इससे आगे और क्या कहूँ–

मस्ती में मस्ती हो, मस्ती की मस्ती हो।
मस्ती को दे शराब, जो महंगी न सस्ती हो॥

यह मस्ती की शराब क्या है? खिंचाव है।शारीरिक मस्ती मानव का मानव से प्रेम करना। मानसिक मस्ती मन से अच्छे और प्रिय विचारों को लेना और अपने इष्टदेव से प्यार करना। आत्मिक मस्ती प्रकाश में प्रकाश रूप होकर आत्मिक आनन्द लेना। सुरत की मस्ती अपनी ज़ात जो अकह, अगाध, अपार अनामी है, उसकी ओर खिंचे रहना।

मा. मोहनलाल मेरी बात को सुनकर हंसते हैं। मैंने कहा मास्टर जी, यही नाम दान की प्राप्ति है। जीवन शांति पूर्वक व्यतीत हो रहा है।

पुर्नजन्म

॥ लेखक : परम दयाल फ़क़ीर साहब जी महाराज॥

कल सेठ दुर्गादास ने ट्रिव्यून समाचार पत्र का एक लेख दिखाया जिसमें अमरीकन डॉक्टर स्टीवेंस ने पुर्नजन्म की खोज के लिए एक संस्था बनायी है जिसके सदस्य भारतवर्ष के विश्व विद्यालयों के प्रोफैसर हैं और इसी प्रकार की कमेटी विभिन्न पश्चिमी देशों में भी स्थापित हो रही हैं। डॉ. स्टीवेंस ने बहुत कुछ पुर्नजन्म के सम्बन्ध में प्रमाण उपलब्ध किये हैं। उनका विचार है कि यदि यह प्रमाण जन साधारण में व्यक्त किये जायें तो संसार के लोगों की मानसिक अवस्था बदल जायेगी। साथ ही रहन-सहन और वर्तमान विज्ञान में भी परिवर्तन हो जायेगा, जिसका बहुत बड़ा प्रभाव होगा। मैंने लेख को सुना। विचार आया क्रियावागमन को तो हिन्दू तर्क शास्त्र भी मानता है और उसके बचाव का उपाय भी प्रस्तुत करता है और जो-2 उपाय और विधि आवागमन से बचने अथवा श्रेष्ठ और अच्छा जीवन प्राप्त करने के लिए बतायी गई है, उनकी सच्ची समझ और सच्चा साधन जन साधारण विशेष कर वह जाति को आवागमन को मानती है। क्रियात्मक रूप से अनुयायी नहीं है।

जी चाहता है कि इस विषय पर अधिकाँश प्रकाश डालूँ, परन्तु समय नहीं, न संसार सुनने को तैयार है और जो महापुरुष इससे अर्थात् आवागमन से छुड़ाने के ठेकेदार बने बैठे हैं, उन्होंने सच्चाई को व्यक्त नहीं किया।

मेरा सम्बन्ध इस आवागमन से छुड़ाने के लिये सन्तमत या राधास्वामी मत से हुआ था और मेरी समझ में आया है कि राधास्वामी मत, कबीर मत या सन्त मत या सनातन धर्म की उच्चकोटि के महापुरुषों की शिक्षा के अतिरिक्त और कहीं भी इस आवागमन या पुर्नजन्म से बचने के लिए कोई सामग्री नहीं है, वह उपाय क्या है? मैं संक्षेप में वर्णन करता हूँ।

मानव का जो वास्तविक जीवन या मानव जो स्वयं है या उसका वास्तविक अस्तित्व है, जिसको सन्तमत में सुरत कहते हैं। जब तक वह सुरत उन भाव और विचारों को जो मानव के अन्तर से उत्पन्न होते हैं, उनके साथ बंधी हुई है, उस मानव का पुर्न जन्म अवश्य होता रहेगा। सन्तों के मार्ग में इन समस्त भाव, विचारों को माया कहते हैं और जिसमें से यह विचार निकलते हैं, उसको काल कहते हैं। किन्तु इस समय जितने भी धर्म, सम्प्रदाय आवागमन से जीवों को निकालने के ठेकेदार हैं, यह अपने अनुयायियों को इन भावों और विचारों जो मानव के अन्तर में उत्पन्न होते हैं उन्हीं के साथ जोड़ते रहते हैं।

मेरे समक्ष इस समय दो स्त्रियाँ बैठी हैं जिनके अन्तर में उनकी आपत्ति और संकट के समय में उनके अपने ही मन के विश्वास के अनुसार मेरा रूप उनके अंतर प्रकट होकर उसने उनको मानसिक सहारा या उत्साह दिया चूंकि मुझे कोई पता नहीं न मैं उनके अन्तर गया तो यदि वह सदैव के लिये मेरे ही उस रूप को आवागमन से बचाने वाला मान लें, तो वह किसी दशा में आवागमन से नहीं बच सकती हैं।

मैं एक समय के सन्त सतगुरु के नाते इन वर्तमान महात्माओं से जो जीवों को आवागमन से बचाने के लिए गुरु बनकर शिष्य बनाते हैं प्रश्न करता हूँ कि इस शिक्षा से क्या जीवों का आवागमन छूट सकता है? आवागमन उसी समय छूटेगा, जैसा कि मैंने उपरोक्त कहा है कि मानव की सुरत, मन से उत्पन्न किये हुये समस्त विचारों से ऊपर जाये, चूँकि मन और विचारों की उत्पत्ति प्रकाश और शब्द जो समस्त संसार को उत्पन्न करने वाला है, उससे होती है। इसलिये जब तक कोई व्यक्ति अपने आपको अपने अन्तर में उस प्रकाश और शब्द को नहीं पकड़ता पुर्नजन्म या आवागमन का समाप्त होना असम्भव है।यही शिक्षा हिन्दू र्तशास्त्रगायत्री और प्राणायाम मंत्र की है– **ॐ भू ॐ भव, ॐस्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् तत्सवितुर वरेणयम् भर्गो देवस्य धीमहि धीयो प्रचो दयात्।** और यही शिक्षा राधास्वामी या संत मत् की भी है कि सहस्र दल कमल से चलते हुये अलख, अगम में जाओ।

चूंकि जन साधारण इस मन और मन के विचारों से संसारिक इच्छाओं के कारण निकल नहीं सकते। इसलिये वैराग्य का होना अनिवार्य है। और वह वैराग्य केवल यही है कि मानव को यह विश्वास हो जाये कि सारा संसार परिवर्तनशील है और मानव संसार में रहता हुआ अपने आपको यात्री मात्र समझता हुआ केवल अपने कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए काम करे और प्रत्येक प्राणी को अपने जैसा समझे जैसा कि संत कबीर ने अपने शब्द '**अब मैं भूलारे भाई**' में अंकित किया है–

दया धार धर्म को पाले, जग से रहे उदासी।
अपना सा जीव सबको जाने, ताहि मिले अविनासी॥

सहे कु शब्द वाद को त्यागे, छोड़े मान गुमाना।
सत् नाम ताहि को मिलिहै, कहै कबर सुजाना॥

डॉ. स्टीवेन्स का ध्यान में वास्तविकता की ओर लाना चाहता हूँ क जब तक वर्तमान भौतिकता और शासकों के अपने-अपने मान देशीय और जातीय अभिमान विद्यमान है यदि पुर्न जन्म सिद्ध भी कर दो तब भी कोई लाभ नहीं है। इसलिए मैंने अपने कर्म भोग वश पुकार की है कि अध्यात्मक या आवागमन से छुटकारे के पूर्व मानवता अनिवार्य है। मैं आशा रखता हूँ कि वर्तमान भारत वर्ष की वह संस्थायें जो संसार को अध्यात्म और आवागमन से बचने का पाठ पढ़ाती हैं। वह जनसाधारण को पहल मानवता का पाठ पढ़ायें। क्योंकि अध्यात्म मानवता के सहारे हैं।

पत्रोत्तर राजेश्वर रावजी। परम दयाल जी की ओर से॥

आपके पत्र आते रहते हैं और आज भी आपका पत्र मिला। आप मुझसे यह चाहते हैं कि मैं आपके इस चोले में रहते हुये आपका आवागमन का क्रम समाप्त करा दूँ। साथ ही आप अपने उसे प्रेम का उल्लेख करते हैं जिस समय आप पत्र लिखने लगते हैं या याद करते हैं।

ऐ राजेश्वर राव! अपने जैसा दीवाना प्रेमी भक्त या जिज्ञासु तुमको समझ कर अपने जीवन के अनुभव के आधार पर बड़े ही प्रेम और हित से पत्र लिख रहा हूँ।

पहला प्रश्न– क्या आवागमन है? और उसका क्या उपाय है? आवागमन के होने का प्रमाण पिछले बसन्त के सत्संग पर हनमकुंडा में पाँच सत्संगों में मैंने दिया था जो कि गरुड़ पुराण रहस्य पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुका है। राजेश्वर! किसी फ़कीर या सन्त ने स्पष्ट शब्दों में ऐसी बातें नहीं कहीं या लिखी जैसी कि मैंने कहीं और लिखी हैं। जितने रूप, रंग, दृश्य, मानव के भीतर साधन या स्वप्न अवस्था के समय उत्पन्न होते हैं, यह सब संस्कारों के कारण होते हैं न कि कोई किसी के अन्तर जाता है। निस्सन्देह रेडियेशन के नियमानुसार बाहर दूसरों की मानसिक या आत्मिक धारें अवश्य प्रभावित होती हैं। इसलिये यदि आवागमन से बचना चाहते हो तो जिस प्रकार बोध-भान, विचार, भाव वासनायें और इच्छायें तुम्हारे अंतर में प्रकट होती हैं तुम उनके पीछे लगना छोड़ दो। जब तक मानव सतगुरु को अन्य समझकर अपने अन्तर उसके प्रेम और भक्ति से सम्बन्ध उत्पन्न किये रखता है उस समय तक उसका आवागमन कभी नहीं जायेगा। तुम दाता दयाल जी के शिष्य हो। उनकी वाणी को यदि ध्यान पूर्वक पढ़ा हुआ होता तो बात तुम्हारी समझ में आ गई होती। तुम्हारे अन्तर जिस वस्तु ने तुमको इस मन के चक्र से निकलना है वह तुम्हारे अपने अस्तित्व की अपनी ही गति है जिसका नाम सन्तों ने निज नाम रखा हुआ है। वह जो तुम्हारा प्रकाश है वह भी तुम्हारे अपने ही स्वरूप का प्रकाश है, इसलिए भाई के नाते आपको आवागमन से बचने का सच्चा और सही उपाय बता रहा हूँ।

मैं स्वयं तुम्हारी भांति बाहरी दाता दयाल जी के स्वरूप के साथ अत्यन्त प्रेम और भक्ति के कारण बंधा हुआ था। उनकी सेवा करता,

प्रेम करता, आरतियाँ करता किन्तु उस समय दाता दयाल जी मुझे दीवाना कहा करते थे। और जब एकान्त वर्णन किया करते थे कि फ़कीर अभी तुम काल से नहीं निकले।

राजेश्वर राव! मेरी सहानुभूति के वार्तालाप के भाव को समझने का प्रयत्न करना। मैं जानता हूँ कि इस मन से निकलना महाकठिन काम है–

जग में जीव रहें बहुतेरे, पर फकीर कोई एका।

इस मन जो चौदह लोक में व्यापक है, इसने ऋषियों, मुनियों, पीरों, पैगम्बरों, भक्तों और उपासकों को संसारी जीवों से भी अधिक बढ़कर जकड़ा हुआ है। संसार का त्याग अर्थात् धन, सम्पति, पुत्र, मान, प्रतिष्ठा का त्याग तो सुगम है किन्तु इस मन के आन्तरिक सम्बन्ध योग, भक्ति व प्रेम को त्यागना अत्यन्त कठिन है। इसके त्याग के लिए यह नाम दान है। वह नाम क्या है? तेरे अन्तर की या तेरे स्वरूप की अपने ही अस्तित्व की गति से जो प्रकाश और शब्द उत्पन्न होता है वह है। बाह्य गुरु मानव को उसकी प्रकृति के अनुसार साहस और सहारा देता हुआ अपने शिष्य की सुरत को इस वास्तविक और सच्चे नाम की ओर ले जाने का प्रयत्न करता है।

किन्तु यदि तुम अपने जीवन को देखो तो तुमको ज्ञात होगा कि बाह्य रूप से यद्यपि तुम इस परमार्थ की ओर जीवन में आकर्षित रहे परन्तु विषय विकार का अंग, परिवार को पालने की लालसा और अन्तिम आयु में निर्वाचन क्षेत्र में आने की इच्छा विद्यमान थी कि नहीं।

संसार के कल्याण या परोपकार आदि के काम भी काल और माया के अतिरिक्त और कुछ नहीं। किन्तु यदि यह निष्काम हैं तो प्राणी की निष्कामता के भाव उससे काम कराते रहते हैं किन्तु सुरत का उनमें फँसाव नहीं होता। मेरे जीवन को देखो, मैंने सन्त मत में कितना काम किया है किन्तु उसका कोई प्रभाव मेरे मस्तिष्क पर नहीं। जो नौकरी बसरा बग़दाद में अपने स्वार्थ के लिये की उसके प्रभाव अब तक भी स्वप्न में रेल गाड़ी और तार का दृश्य उपस्थित करते रहते हैं, इसलिये मैं यह नहीं कहता कि संसार के काम न करो। न तुमको त्रुटि पूर्ण रूप से त्यागी या वैरागी बनाना चाहता हूँ, बल्कि कर्त्तव्य समझ कर हानि, लाभ की परवाह न करते हुए, जब तक जीवन है काम करो। किन्तु यह विश्वास रखो कि तुमको आवागमन से बचाने वाला फ़कीरचन्द 18 रेलवे मंडी, होशियारपुर में नहीं रहता। बल्कि वह आदि प्रकाश व आदि शब्द जो तुम्हारे अपने ही स्वरूप का प्रतिबिम्ब है उसको पकड़ो।

भाई के नाते जो कुछ मैं कर सकता था, वह मैंने कर दिया। कोई बात छुपा कर नहीं रखी या रेडियेशन का नियम काम करता रहता है। मैं इस वर्तमान जीवन में इस समय निर्बन्ध पुरुष हूँ। जब बसन्त पर जाऊँ, मेरे सत्संग से लाभ उठाने का प्रयत्न करना।

इस पत्र को पढ़ कर नन्दू भाई जी को भेज देना ताकि वह भी पढ़ लें और फिर "मनुष्य बनो"। मैं प्रकाशित होने के लिए भेज दें।

तुमने लिखा है कि इन सोपानों से मैं तुमको पार कर दूँ। सुनो! सहस्रदल कमल से महासुन्न तक जो कुछ भी होता है यह सब मानव

के अपने ही भाव, विचार और आशाओं का परिणाम होता है। सोहं गति भी मन के कारण रूप का विकास है। वास्तविक वस्तु प्रकाश और शब्द जो तुम्हारा अपना ही प्रकाश सोपानों अथवा दृश्यों की हविस को छोड़ो। यह सब माया के चक्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। शेष इस पर प्रकाश बसन्त के अवसर पर डालूँगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिस भाव से, जिस नीयत से, मैंने तुमको मुक्त करने के लिये यह पत्र लिखा है, इसका प्रभाव तुम पर अवश्य पड़ेगा, यदि तुम सचमुच आवागमन से बचने की प्रबल इच्छा रखते हो।

सुनो! राजेश्वर राव! यदि अन्तर का नाम, शब्द और प्रकाश तुम नहीं पकड़ सकते या उसमें नहीं ठहर सकते, तो एक बात कहता हूँ केवल दाता दयाल जी के स्वरूप का ही ध्यान रखो। जब तुम्हारा प्राण छूटेगा तो तुम (अन्तमता, सोगता) के नियमानुसार वहाँ चले जाओगे जहाँ वे गये हैं। इससे और अधिक सुगम उपाय मैं नहीं बता सकता। चूँकि उनके ध्यान से मैं इस जीवन में ही निर्बन्ध हो गया। यह उनकी रेडियेशन, हित और मत था। इसलिये मुझे विश्वास है कि यदि तुम्हारा प्राण उनके ध्यान में छूटेगा, तो तुम अवश्यमेव वहाँ जाओगे जहाँ वह गये थे, या जहाँ वह है। यह क्रिया तथा उपाय सरल, सुगम हैं और ऊपर वाला कठिन है।

मुझे स्वयं ज्ञात नहीं कि वह कहाँ गया? किन्तु चूँकि उनके ध्यान से मैं इसी जीवन में पार हो गया। इसलिये मुझे विश्वास है कि यदि तुम उनका ध्यान करते हुये यदि प्राण छोड़ोगे तो निस्संदेह आवागमन से बच जाओगे।

हमारी बात। प्रेम की दात। मनुष्य बनो की पुकार। जीवनसुधार॥

क्यों वक्त खो रहा है, सुन सांईं की सदा को।
कर अख्त्यार दिल से, इन्सान की श्रद्धा को॥
अपनाया क्यों नहीं है, तस्लीम को रज़ा को।
गुम करदे ज़त में फिर, अपनी फ़ना बक़ा का॥

मौज़ाधीन गत दो सप्ताह में महाराज जी के अधिकांश बड़े ही महत्वपूर्ण लेख प्राप्त हुए हैं जो समय के संत-सतगुरु के सम्न्ध में है। चूँकि यह हमारा विशेष अंक है, हम भी ऐसा ही चाहते थे और महाराज जी का यही आदेश है कि इन सब लेखों को एक ही अंक में निकाला जाये तो ठीक रहेगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि जो कोई भी सच्चा जिज्ञासु महाराज जी के इन अंतिम आयु के लेखों को ध्यान पूर्वक पड़ता रहेगा उसको, वास्तविकता से मिलाप और परम पद की प्राप्ति शीघ्र ही हो सकती है।

परम दयाल मोहि देवो दाना।
चित्त रहे तुम चरण समाना॥

सत्गुरु सबका कल्याण करें। जगत में मानवता का राज हो।